जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2531

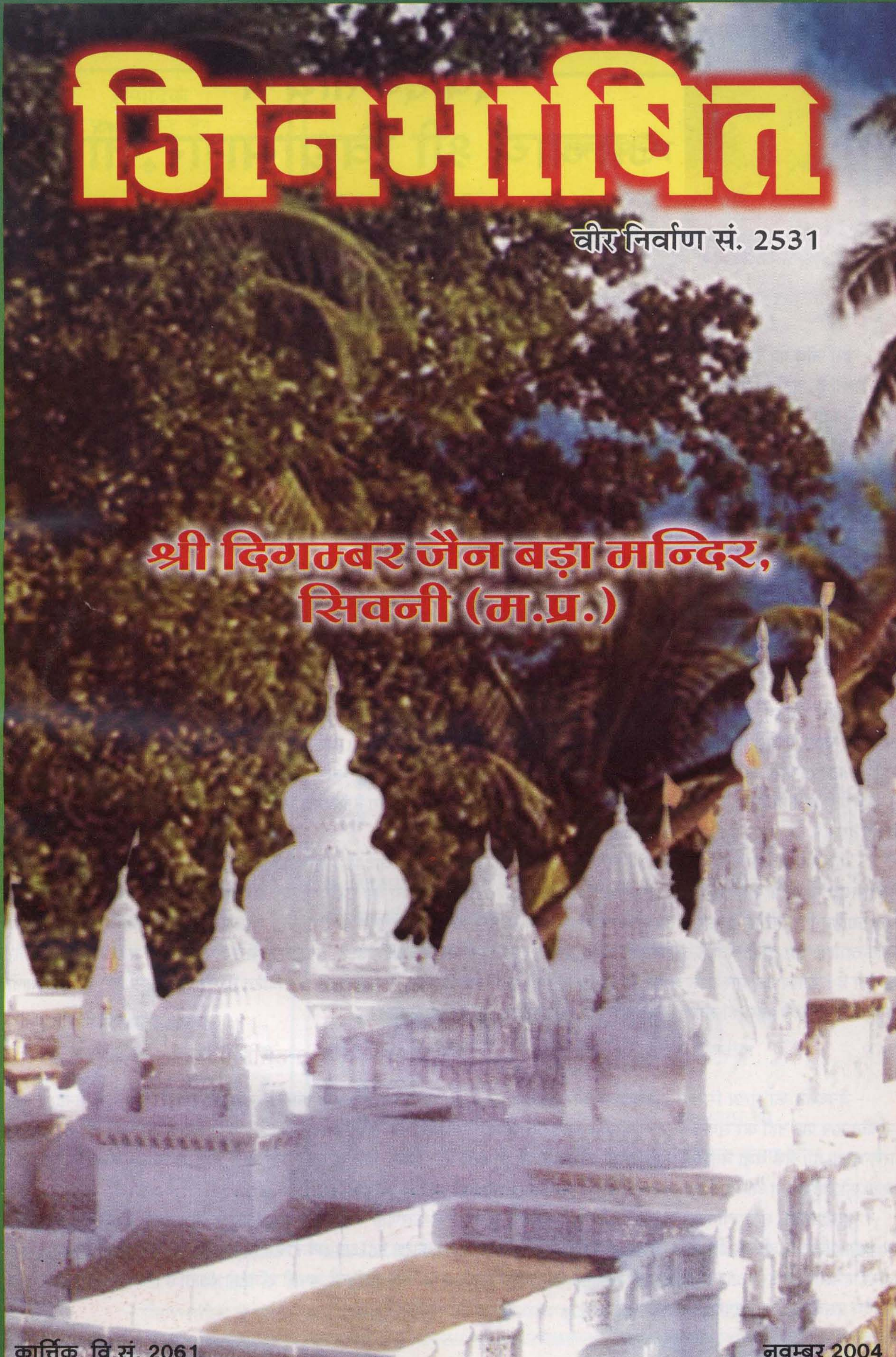

श्री दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर,
सिवनी (म.प्र.)

कार्त्तिक, वि.सं. 2061

नवम्बर 2004

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

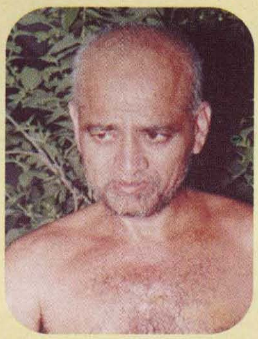

दयोदय तीर्थ में आचार्य श्री विद्यासागर जी के उद्‌बोधन

जीव को पाप से बैर और धर्म से प्रीति रखना चाहिए

इस जीव का बैरी पाप है और धर्म बंधु है ऐसा दृढ़ निश्चय करता हुआ, जो अपने आपको, आत्मा को जानता है, अपने कल्याण को जानने वाला है, वही ज्ञानी है। संसार शत्रु नहीं है, पाप शत्रु है और पाप जिस आत्मा में उत्पन्न होता है, वही आत्मा चाहे तो उस पाप को भी निकाल सकती है। जो जीव पाप का आलिंगन करता है और धर्म को हेय समझता है, उसकी कोई कीमत नहीं होती। जीव को पापों से लड़ना होगा और धर्म को अपनाना होगा, जिसने इस तथ्य को जान लिया, मान लिया और अपने आचरण को उसके अनुरूप ढाल लिया, वही ज्ञाता है।

जो व्यक्ति इंद्रियों का दास हो जायेगा, हेय-उपादेय को नहीं जान पायेगा, इस स्थिति में जीव बिना हेय-उपादेय के ज्ञान के हेय को,दोष को नहीं छोड़ सकता है। इसलिए इस शरीर को पड़ौसी मानो, ऐसा आचार्य ने कहा है। शरीर स्थित इंद्रियों के माध्यम से ही विषयों का संग्रह होता है और जहाँ विषयों का संग्रह होता है, वहीं मूर्छा आती है और कर्म बँध जाते हैं। कर्मबंध होने से गति-आगति होती है, संसार में भटकना होता है और पुनः शरीर और इंद्रियाँ मिलती हैं। इन इंद्रियरूपी खिड़कियों के माध्यम से विषय रूपी हवा आने लगती है। कषायों के माध्यम से पुनः बंध हो जाता है। संसारी जीव इसतरह जंजाल में फँसता ही जाता है। बिना इंद्रियदमन के मात्र चर्चाकर लेने से समाधि का द्वार खुल नहीं सकता। अतः जीव का उद्‌देश्य शुद्धात्मा की प्राप्ति होना चाहिए।

थोड़ा सा मोह भी आकुलता का कारण होता है

जिस चेतनभाव से कर्म बँधता है, वह तो भाव बंध है और कर्म तथा आत्मा के प्रदेशों का एक आकार होना द्रव्य बंध है। मोह के कारण यह चेतन भाव हमेशा प्रभावित होता रहता है। यह मोह ही संसार का कारण है। थोड़ा सा मोह भी आकुलता का कारण होता है, जैसे थोड़ा सा ऋण या कर्ज-कर्ज ही माना जाता है, जब तक वह पूर्ण रूप से चुक नहीं जाता, मन में बैचेनी बनी ही रहती है। अमीर और गरीब दोनों को ही बैचेनी बनी ही रहती है। बैचेनी कई प्रकार की हुआ करती है। यह बात अलग है कि बड़ों की बैचेनी समझ में नहीं आती है, लेकिन जो धन की तृष्णा है वह महान आकुलता का प्रतीक है।

मोक्षमार्ग में एक दूसरे से ज्यादा घनिष्ट संबंध नहीं रखना चाहिए, वरना बाद में अलग होते समय बड़ी परेशानी होती है। जैसे बरफी जमाते समय थाली में पहले चिकनाई लगा लेते हैं, ताकि बरफी निकालते समय वह टूटे न, उसीप्रकार संबंधों को बनाने पर भी इतना ध्यान रखना चाहिए कि विछोह के समय तकलीफ न हो। कषाय करनेवाला जीव उस मुर्गे के समान है, जो दर्पण में अपने ही बिम्ब को देखकर लड़ता रहता है और दुखी होता है, ठीक उसी प्रकार कषाय करने वाला स्वयं दुखी होता है, क्योंकि कषाय अपनी आत्मा को ही कषती है और दुख देती है। कषाय उस बारूद के समान है, जो कि निमित्त रूपी अग्नि का संयोग मिलते ही विस्फोटित हो उठती है। इसलिए हमें सावधानी रखना चाहिए, वरना आग का संयोग मिलते ही दुकान भी जल कर राख हो सकती है।

कारणों की समग्रता से ही कार्य की निष्पत्ति होती है

जैनदर्शन का मुख्य सिद्धांत कार्यकारण की व्यवस्था पर आधारित है। कार्यकारण की व्यवस्था को समझे बिना हम जैनदर्शन का समीचीन ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते हैं। एक कार्य के लिए परंपरा से कई कारणों की आवश्यकता होती है। पहले कारण का कार्य अगले कार्य का कारण बनता है। जैसे घड़ा बनाने के लिए मिट्टी कारण है, फिर लौंदा, फिर चाक, फिर कुंभकार तब कहीं घड़े का निर्माण होता है। इन सभी कारणों को स्वीकारना अनिवार्य होता है। कारणों की समग्रता से ही कार्य की निष्पत्ति होती है।

शुभोपयोग, शुद्धोपयोग का कारण है और शुद्धोपयोग केवलज्ञान में कारण है। जो लोग शुभोपयोग के अभाव को शुद्धोपयोग मानते हैं, यह धारणा गलत है, क्योंकि किसी चीज़ का अभाव किसी अन्य चीज़ का कारण नहीं बन सकता है। जिस तत्त्व या वस्तु की ओर हमारी रुचि होती है, हमारी दृष्टि उसी ओर रहती है। इससे स्पष्ट है कि हमारे विचार, हमारी गतिविधियाँ, हमारी रुचि को बताती हैं। भगवान के सामने जीव को सदैव प्रसन्नचित्त रह कर प्रार्थना करनी चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि. नं. UP/HIN/29933/24/1/2001-TC डाक पंजीयन क्र.-म.प्र./भोपाल/588/2003-05

नवम्बर 2004 मासिक **जिनभाषित** वर्ष 3, अङ्क 10

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

◆

कार्यालय
ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

◆

सहयोगी सम्पादक
पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया,
(मदनगंज किशनगढ़)
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

◆

शिरोमणि संरक्षक
श्री रतनलाल कँवरीलाल पाटनी
(मे. आर.के.मार्बल्स लि.)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

◆

प्रकाशक
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2151428, 2152278

◆

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	500 रु.
वार्षिक	100 रु.
एक प्रति	10 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

		पृष्ठ
◆ **सम्पादकीय**	: साधुओं का शिथिलाचार	2
◆ **प्रवचन**		
● दयोदय तीर्थ में उद्बोधन	: आ.श्री विद्यासागर जी	आव.पृ.2
● ज्योति के आवाहन और पूजन का पर्व है दीपावली	: मुनिश्री समतासागर जी	आव.पृ.3
● विश्व धर्म की आधार-शिला अहिंसा	: मुनि श्री आर्जवसागर जी	आव.पृ.4
◆ **लेख**		
● जैन संस्कृति, तीर्थों का संरक्षण	: डॉ. अनेकांत कुमार जैन	3
● विविध श्रावकाचारों में सल्लेखना	: डॉ. जयकुमार जैन	6
● संस्कृत वाङ्मय में अहिंसा की अवधारणा	: डॉ. रामकृष्ण सराफ	9
● जरूरत है जम्मू में दि. जैन मन्दिर स्थापना की	: कैलाश मड़बैया	14
● अनर्गल प्रलाप पुनः पुनः	: मूलचन्द्र लुहाड़िया	16
● मेरा कनाडा प्रवास	: पं. राकेश जैन	19
● अप्रत्यक्ष रूप से निर्माल्य वस्तु का प्रयोग	: डॉ. सुधीर जैन	22
◆ **जिज्ञासा-समाधान**	: पं. रतनलाल बैनाड़ा	23
◆ **प्राकृतिक चिकित्सा**		
● गर्भावस्था में आहार	: डॉ. वन्दना जैन	21
◆ **ग्रंथ-समीक्षा**		
● तीर्थोदय काव्य का सौन्दर्य	: श्रीपाल जैन 'दिवा'	25
◆ **संदेश, गृह मंत्री**	: शिवराज पाटील	27
◆ **कविताएँ**		
● भावना	: क्षु. ध्यानसागर जी	8
● जीवन किताब	: इंजी. जिनेन्द्र कुमार जैन	8
◆ **समाचार**		28 -32

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
जिनभाषित से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

साधुओं का शिथिलाचार

अभी दि. ७-११-०४ को "आज तक" टी.वी.चैनल ने जुर्म विषय के अंतर्गत दिगम्बर आचार्य श्री विरागसागर जी के जुर्म को प्रदर्शित किया था। उन पर व्यभिचार का दोषारोपण किया गया और उसकी पुष्टि में दो आर्यिकाओं, एक श्रावक और एक ब्रह्मचारी के बयान कराए गये। एक दिगम्बर जैन आचार्य पर अपने ही संघ की अपने ही द्वारा दीक्षित आर्यिकाओं द्वारा स्पष्ट शब्दों में व्यभिचार एवं गर्भपात के आरोप लगाये जाना एवं उनका 'जुर्म' शीर्षक के अंतर्गत सार्वजनिक प्रदर्शन दिगम्बर जैन साधु संस्था का ही नहीं, दिगम्बर जैन समाज का भी घोरतम अपवाद है। ऐसी घटनाएँ तो गत वर्षों में और भी घटी हैं, किन्तु उनकी चर्चा दिगम्बर जैन समाज तक ही सीमित रही है। एक आचार्य सन्मतिसागर जी की घटना देश-विदेश के समाचार पत्रों में प्रकाशित हुई थी। तब भी हमने अत्यंत पीड़ा का अनुभव किया था, किन्तु अभी आचार्य विरागसागर जी की घटना का टी.वी. पर प्रदर्शन व्यापक होने और गर्हित रूप में होने के कारण अधिक पीड़ाकारक है।

ऐसा कौन धार्मिक श्रद्धालु व्यक्ति होगा जिसका हृदय अपने महान् जैनधर्म की ऐसी घोर कुप्रभावना से तिलमिला न गया हो। परमेष्ठी पद पर स्थित साधुओं के आचरण का ऐसा अध:पतन सत्य हो या न हो, परंतु उसका ऐसा सार्वजनिक प्रदर्शन हमारे लिए सर्वाधिक पीड़ा का विषय है। हमारे गुरुओं की और हमारे धर्म की कुप्रभावना का यह महान संकट हमें चिंता के साथ-साथ गहन चिंतन की भी प्रेरणा देता है। टी.वी. का यह दण्डनीय प्रदर्शन सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज के माथे पर कलंक का टीका है। हम उस टी.वी. वाले पर सम्भवतया कानूनन कोई कार्यवाही नहीं कर सकेंगे। जब दो आर्यिकाएँ पीड़िताओं के रूप में स्वयं आचार्य जी के विरुद्ध जुर्म की घोषणा कर रही हैं, तो टी.वी. वाले का प्रदर्शन किसी अनुचित एवं अवैधानिक कृत्य की श्रेणी में नहीं आता है।

यदि हम गहराई से सोचें, तो दिगम्बर जैनधर्म की इस घोर कुप्रभावना के कारण हम स्वयं हैं। दिगम्बर जैन साधु के लिए हमारे शास्त्रों में स्थापित आचारसंहिता का अनेक आचार्य एवं साधुओं के द्वारा दण्डनीय रूप में उल्लंघन किया गया है और हम उसका विरोध नहीं करके उसको प्रोत्साहित करने का अपराध करते हैं। आचार्य सन्मतिसागर प्रकरण में भी लीपापोती की गई। अभी आसाम में आ.दयासागर जी के शिथिलाचरण के विरुद्ध गौहाटी समाज ने आवाज उठाई, तो समाज के कुछ नेतागण उस शिथिलाचरण की सुरक्षा के लिए ढाल बनकर खड़े हो गए। आज अनेक संघों में मुनि, आर्यिका, ब्रह्मचारिणियाँ साथ रहती हैं। एक ही स्थान पर ठहरती हैं। कहीं-कहीं तो एक मुनि और एक आर्यिका साथ रहते हैं। इसके साथ-साथ पारस्परिक आचार व्यवहार के सारे निर्दिष्ट बंधनों को तोड़कर उच्छृंखल, स्वच्छंद व्यवहार से डर नहीं रह गया है। संध्या काल के बाद मुनियों के निवास पर महिलाओं का आवागमन निषिद्ध रहना चाहिये, किन्तु हमें यह देखकर भारी पीड़ा होती है कि मुनि रात्रि को कविसम्मेलन, सांस्कृतिक कार्यक्रमों, गरबानृत्य, जिनमें महिलाएँ भाग लेती हैं, बैठकर देखते हैं। रात्रि में महिलाओं से वार्ता करते हैं। विडम्बना यह है कि मुनियों के शिथिल आचरण की चर्चा करने वालों को मुनिनिंदक घोषित कर उनकी उपेक्षा की जाती है। अब तो साधुओं में बढ़ रहे शिथिलाचार के लिए शिथिलाचार शब्द भी बौना हो गया है। उसको हम दुराचार कहें तो अनुचित नहीं होगा।

यदि अब भी हम नहीं चेतेंगे तो टी.वी. और समाचार पत्रों में दिगम्बर जैन साधुओं के चरित्रदोष की घटनाएँ दोहराई जाती रहेंगी। काश यह "आज तक" टी.वी. के प्रदर्शन की घटना हमारी आँखें खोल सके और हम अपने परमेष्ठी जैसे भगवान के समान पद पर प्रतिष्ठित हमारे साधुओं की गरिमा को इस प्रकार मिट्टी में मिलने से रोकने के अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग हों और संगठित होकर मुनि महाराजों को विनयपूर्वक आगमानुकूल आचार संहिता की परिपालना के लिए निवेदन करें और जानबूझकर स्वार्थ साधना के कारण कोई साधु उनकी पालना नहीं करे, तो हम कठोरतापूर्वक उनके विरुद्ध उचित कदम उठाएँ। प्रेस एवं प्लेटफार्म के माध्यम से जागृति उत्पन्न करें कि धर्म का स्वरूप अंधभक्ति से मुक्त होकर समीचीनता की परिक्षा करके ही देवशास्त्रगुरु की उपासना-भक्ति करनी है। दि.जैन समाज की अखिल भारतीय प्रतिनिधि संस्थाओं से निवेदन है कि कुप्रभावना को रोकने के बिन्दु पर वे सब संगठित होकर समय रहते धर्म प्रभावना के अपने दायित्व का निर्वाह करने के प्रति जागरूक हों।

मूलचन्द लुहाड़िया
लुहाड़िया सदन
जयपुर रोड, मदनगंज - किशनगढ
(अजमेर) - ३०५८०१ (राज.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन संस्कृति, तीर्थों का संरक्षण: आखिर किसका दायित्व?

डॉ. अनेकांत कुमार जैन

गिरनार टोंक पर पंडों द्वारा जैनों के साथ मारपीट, विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष लहूलुहान

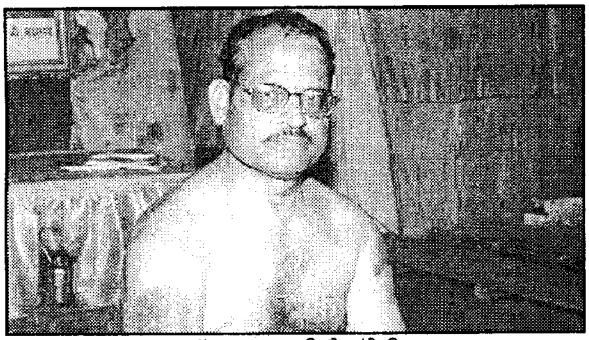

डॉ. फूलचन्द्र जी जैन 'प्रेमी'
भुजाओं पर बाबाओं द्वारा किये गये प्रहार के निशान

इतिहास गवाह रहा है कि जब-जब अपने धर्म, संस्कृति एवं राष्ट्र पर आततायियों ने हमला किया है, तब-तब जैन बंधुओं ने डटकर उनका मुकाबला किया है। आज भी जब कभी राष्ट्र तथा हिन्दू धर्म के ऊपर आँच आती है, तब नि:स्वार्थ भाव से जैन समाज तन-मन-धन से समर्पित हो जाता है। हिन्दू धर्म के इतिहास पर हम दृष्टिपात करेंगे, तो पायेंगे कि प्राचीन काल से आज तक जैन धर्मावलम्बियों ने उनके हर आंदोलन में उनका जी जान से सहयोग किया है। रामजन्मभूमि के लिए अपनी शहादत देने वाले कोठारी बंधु जैन धर्मावलम्बी ही थे। हिन्दुत्व का नारा लगाने वाले 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ,' 'विश्व हिन्दू परिषद्' तथा 'भारतीय जनता पार्टी' जैसे अनेक दलों में जैन समुदाय के लोग अनेक पदों पर हैं तथा जैन व्यापारी वर्ग लाखों करोड़ों रुपये देकर उनका भरणपोषण भी करता है। देश में कई हिन्दू मंदिर ऐसे हैं, जिनका निर्माण जैन बंधुओं ने अपने पैसे से करवाया है। आज देश भर में जहाँ भी रामलीलायें या कथाव्यास होते हैं, उनमें कई आयोजन जैन बंधु अपने पैसों से करते हैं, किन्तु जैन समाज की इस उदारवादिता का परिणाम यह हो रहा है कि आज उसकी खुद की अस्मिता संकट में है और इनमें से कोई भी संगठन उसका साथ नहीं दे रहे हैं।

जैन संस्कृति कम से कम उतनी पुरानी तो है ही, जितनी कि वैदिक संस्कृति। भारत की मूल श्रमण या जैन संस्कृति जो चौबीस तीर्थंकरों की पूजा करती है। वैदिक संस्कृति के पवित्र जन्मस्थानों तथा निर्वाणस्थानों का आदर करती है। वहीं जैन संस्कृति आज अपने ही देश भारत में अपने तीर्थों की सुरक्षा के लिए गुहार लगा रही है और सरकार के कानों में जूँ तक नहीं रेंग रही है।

गुजरात प्रदेश में जूनागढ़ स्थित गिरनार पर्वत जैनों का हजारों साल से पवित्र स्थान रहा है। जैन धर्म के बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ वहाँ की पाँचवीं टोंक से मोक्ष गये थे। इसलिए जैन समाज हजारों साल से उसकी पूजा अर्चना करता चला आ रहा है किन्तु आज वहाँ पर तथाकथित भगवावेश धारी पंडों ने अनधिकार अतिक्रमण कर कब्जा जमा रखा है और दत्तात्रेय स्वामी की मूर्ति स्थापित कर उसकी पूजा कर कमाई कर रहे हैं। उस पाँचवीं टोंक पर तीर्थंकर नेमिनाथ की प्राचीन प्रतिमा है तथा उनके चरणचिह्न बने हुए हैं। आज कोई जैन भाई यदि अपने तीर्थंकर की पूजा के लिए वहाँ जाता है तो उसके साथ क्या व्यवहार किया जाता है, उसका प्रत्यक्ष भुक्तभोगी स्वयं मैं हूँ।

मैंने अपने परिवार के साथ २७/१०/२००४ को प्रात: काल ४ बजे गिरनार पर्वत की तीर्थयात्रा प्रारंभ की। करीब दस हजार खड़ी सीढ़ियों पर यात्रा करने के बाद जैसे ही हम पाँचवीं टोंक पर पहुँचे तो वहाँ का दृश्य देखकर हम दंग रह गये। दो पंडे (जो कि कमलकुंड मठ के थे)वहाँ पर कब्जा किये हुये बैठे थे तथा भगवान नेमिनाथ के चरणों को पुष्पों से ढके हुये थे और ललकार कह रहे थे कि यहाँ सिर्फ हिन्दू दर्शन करने आयेंगे, कोई भी जैन नहीं आ सकता और यदि आयेगा तो हम उसे मार डालेंगे। उन भगवावेशधारी पण्डों साधुओं की ऐसी वाणी सुनकर सबको अचम्भा हुआ, किन्तु तभी एक और घटना घटी। एक कर्नाटक वासी जैन भाई वर्धमान, रामू सिरहरी (पता - ईनाप, तालुकातनी, बेलगाम) आगे बढ़ा और बोला कि हम बहुत दूर से आये हैं हमें एक बार चरणों के दर्शन करवा दो। इस बात पर उन पंडों ने उसे दो थप्पड़ रसीद किये। वह बौखलाया और उसका साथी सुनील जैन (बजन्नौर, देवगुला, हल्ली, बेलगाम) उसे बचाने आगे आया। इतने में उन साधु पंडों ने आव देखा न ताव, दो मोटे डंडे उठाकर जमकर मारना चालू कर दिया। अपने जैन भाई को पिटते देख हमसे नहीं रहा गया और मैं तथा मेरे पिताजी डॉ. फूलचंद जैन प्रेमी (अध्यक्ष अखिल भारतीय दि.जैन विद्वत् परिषद्) उन्हें बचाने आगे आये। वे पंडे नहीं देख रहे थे कि स्त्री बच्चे भी वहाँ हैं। उन्होंने उन्हें भी मारा और उन्हें बचाते हुये मैं और पिताजी दोनों उनके निर्मम डंडों से लहूलुहान हो गये। इस घटना से सीढ़ी पर भगदड़ मच गयी। कई स्त्री, बच्चे, बुजुर्ग घायल हो गये। जयपुर दि. जैन संस्कृत महाविद्यालय में कार्यरत पं.राजकुमार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शास्त्री, ग्वालियर के बालकवि कमलेश जैन, दलपतपुर तथा और भी अन्य बंधु जो विविध प्रांतों से आये थे घायल हो गये। मेरे बाँये हाथ में आज तक सूजन है तथा छाती का घाव अभी भरा नहीं है। राजकुमार जी तथा बालकवि कमलेश के हाथ के पंजों पर गहरी सूजन आयी। हम दो चार लोग यदि आगे आकर उनसे नहीं जूझते तो सीढ़ियों से पहाड़ों पर गिरकर निश्चित ही कई महिलाओं, पुरुषों, बच्चों की मौत हो जाती। यह घटना प्रातः ७ से ८ बजे के बीच घटित हुयी। सभी जैन यात्री बिना दर्शन किये ही दस हजार सीढ़ी उतर कर वापस आ गये।

इस घटना से हमारे मन में आक्रोश और बढ़ गया। नीचे आते समय हमने गोमुखी माता के मंदिर के भी दर्शन किये। वहाँ भी पंडे थे, वहाँ भी चौबीसों भगवान के चरण चिन्हों की एक शिला स्थापित है। इक्यावन रुपये देने पर एक पंडे ने हमें वहाँ का अभिषेक करवाया। हम लोग नीचे आकर धर्मशाला के मैनेजर सुनीलकुमार जैन से मिले। उन्होंने एफ.आई.आर. दर्ज कराने की सलाह दी। इस बात पर कर्नाटक के जैन बंधु तो इस डर से कि बार-बार पेशी में न आना पड़े, मात्र शिकयतनामे पर हस्ताक्षर कर वहाँ से चले गये। कई स्थानीय लोगों ने हमें भी धमकाया, डराया कि एफ.आई.आर. मत दर्ज करवाओ, नहीं तो तुम ही लोग फँस जाओगे, किन्तु वहाँ हमने अपने दिमाग की आवाज न सुनकर दिल की आवाज सुनी और मैनेजर के साथ थाने जाकर रिपोर्ट दर्ज करवाने की, यह सोचकर ठान ली कि अब चाहे जो हो देखा जायेगा। अपने धर्मतीर्थ और धर्म भाइयों के लिए यदि हमें जान भी देनी पड़े तो हम देंगे। ऐसा संकल्प कर हम धर्मशाला में उपस्थित सभी प्रत्यक्षदर्शी भाइयों के गवाह के रूप में हस्ताक्षर करवाकर तथा कुछ गवाहों को साथ लेकर तालुका पुलिस चौकी जूनागढ़ पहुँच गये। वहाँ पर तैनात पुलिस अधिकारी प्रमोद कुमार देवरा जी (पी.एस.आई.) ने हमारी बातें ध्यान पूर्वक सुनीं तथा हमारी अर्जी को पढ़ा। उन्होंने मेरा पिताजी का तथा राजकुमार जी का डॉक्टरी मुआयना सिटी हास्पिटल पुलिस जीप में भेजकर करवाया। डॉक्टर ने अपनी रिपोर्ट दी। हमें एडमिट कर डिस्चार्ज किया। हमारे पिताजी ने सारी जिम्मेदारी निर्भयतापूर्वक निभाते हुये अपने नाम से एफ.आई.आर. दर्ज करवायी। सारा कार्य करवा कर हम रात्रि में अपने-अपने घर की तरफ निकल पड़े।

पुलिस स्टेशन पर ही एक व्यक्ति ने हमें बताया कि हम चाहकर भी कुछ कर नहीं पाते हैं, क्योंकि उन्हें सरकार से परोक्ष प्रत्यक्ष संरक्षण प्राप्त है। विचारना यह है कि जिस भाजपा सरकार का सहयोग जैन समाज तन-मन-धन से करती है और उन्हें अपना समझती है, उन्हीं की सरकार में जैन तीर्थ और जैन सबसे ज्यादा असुरक्षित क्यों हैं? उन्हीं प्रदेशों में जैन अल्पसंख्यक घोषित नहीं हो पाये हैं, जिनमें भाजपा की सरकार रही है। आखिर इस देश में सर्वाधिक वास्तविक अल्पसंख्यक जैन समाज की सुरक्षा कौन सी सरकार करेगी?

पिछले कुछ दिनों गुजरात के राज्यपाल महोदय का अभिनंदन कर जैन संस्कृति संरक्षण मंच वालों ने यह घोषण कर दी कि गुजरात के गिरनार पर्वत पर सब ठीक हो गया है, जब कि वहाँ पर पुरातत्त्व विभाग के नियमों की अनदेखी कर कंकरीट और सीमेंट से एक विशाल छतरी अतिक्रमण कर बनवा ली गयी है और जैनों के साथ मारपीट की गयी है। इसका प्रत्यक्ष भुक्तभोगी मैं हूँ।

इस पूरे प्रसंग में मैं अपने पिताजी प्रो.फूलचन्द जैन प्रेमी के जो कि 56 वर्ष के हैं, साहस का कायल हूँ कि अपने धर्म और संस्कृति के अस्तित्व को लुटता देख तथा अपने जैन भाई को पिटता देख उनके अंदर बैठा क्षत्रिय जाति का धर्म और बुंदेला ठाकुर का खून जाग उठा तथा लाठी डंडे खाते हुये भी, उम्र के इस पड़ाव पर भी वे मैदाने जंग में डटे रहे, भागे नहीं। उनके इसी साहस धर्म का अनुकरण पूरी समाज को करना चाहिए। मेरी माँ डॉ. मुन्नी जैन एवं छोटी बहन श्रीमती इन्दु जैन यद्यपि कुछ दूरी पर थीं, किन्तु उन्होंने भी साहस का परिचय देते हुये वहाँ से पलायन नहीं किया, बल्कि यात्रियों द्वारा लाख मना करने पर भी वे पाँचवीं टोंक तक गयीं तथा दूर से ही दर्शन करके वापस आ गयीं।

इस पूरे प्रकरण से हमारा उत्साह चौगुना हो जाना चाहिए। यदि हम महावीर के सच्चे भक्त हैं और भरतचक्रवर्ती के सही वंशज हैं और सच कहें, तो यदि अपनी माँ का दूध पिया है तो हमें गिरनार जाना छोड़ना नहीं चाहिए। हमें मालूम है हमारे बहुत से भाई इसी डर से वहाँ जा नहीं रहे हैं, किन्तु शायद यही कारण है कि वे मुठ्ठी भर पंडे लोग हमारे तीर्थों को हड़प रहे हैं। यह सोचना कितना आसान है कि जाने दो हमें क्या करना है? हमारे जाने से क्या होगा? आज इसी सोच ने हमें इस मुकाम पर लाकर खड़ा कर दिया है। मैं कहता हूँ पूरे देश में आंदोलन होना चाहिए, युवकों को ग्रुप बनाकर पर्वत की यात्रा करनी चाहिए। लाठी, डंडे चलते हैं, तो चलने दें। जब तक छाती पर डंडे नहीं पड़ेंगे, तब तक क्षत्रिय कुल का जैन जागेगा भी नहीं। बनिया ही बना रहेगा। दूसरे लोग अपने-अपने धर्म की रक्षा के लिए क्या कुछ नहीं करते? लड़ते हैं, मरते हैं। और हम यह सोचकर बैठे रहें कि हमें क्या करना ? भावी पीढ़ी क्या हम पर थूकेगी नहीं कि हमारे पुरखे तो कायर थे, सब कुछ आँखों के सामने लुटवा लिया और देखते रहे।

मैं तो समाज के सभी तथाकथित नेताओं से भी कहता हूँ कि मंचों पर झूठी भाषणबाजी और नारों से कुछ नहीं होता, हिम्मत है तो जाओ गिरनार टोंक पर और नेमिनाथ भगवान की जयकार लगाओ। फिर चाहे डंडे पड़ें या लाठी- खाकर आओ, तब पता पड़े कि आंदोलन किसे कहते हैं। मैं अपनी पूरी यात्रा से आगे की नीति के संदर्भ में निम्न बिंदुओं पर पहुँचा हूँ:

1. भाजपा, आर.एस.एस. , विश्व हिन्दू परिषद् से प्रश्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूछें कि क्या जैन संस्कृति और तीर्थों की रक्षा करना उनके एजेण्डे में नहीं है?

2. यदि है तो वे मौन क्यों हैं? तथा राम, कृष्ण जन्मभूमि की तरह जैन संस्कृति पर हमले पर बौखलाते क्यों नहीं हैं?

3. ऐसा एक भी दिन खाली नहीं जाना चाहिए जब गिरनार पर्वत की पाँचवीं टोंक की यात्रा जैन यात्री न करें। सौ, पाँच सौ की संख्या में जायें और पूरे रास्ते एक जुट रहें और नेमिनाथ का जयकारा लगाते हुये जायें। बडी धर्मशाला से 'गिरनार गौरव' पुस्तक खरीदकर, पढ़कर जायें।

4. रास्ते में किसी से व्यर्थ की बहस न करें, किसी को गाली, अपशब्द या ऐसे वचन न कहें, जिससे वहाँ पूजित देवी देवताओं का अपमान हो।

5. फोटो कैमरे, वीडियो कैमरे, साथ लेकर जायें। पाँचवीं टोंक पर दत्तात्रेय महाराज की मूर्ति को बिना छुये वहाँ नीचे स्थित नेमिनाथ भगवान के चरणों पर, चढ़े फूलों को विनम्रता से हटायें, अर्घ बोलकर चावल चढ़ायें। फिर पीछे स्थित भगवान नेमिनाथ की मूर्ति के समक्ष अर्घ चढ़ायें। भजन, पूजन, पाठ करें। पंडा यदि इस हेतु शुल्क मांगें तो न दें। और अगर आक्रोश दिखायें तो जमकर मुकाबला करें।

6. इस बात की रिपोर्ट तालुका पुलिस चौकी जूनागढ़ में दें तथा एफ.आई.आर. जरूर दर्ज करायें। इसमें बंडी धर्मशाला के मैनेजर सुनीलकुमार पूरा सहयोग देते हैं। बंडी धर्मशाला की शिकायत पुस्तिका में अपनी शिकायत जरूर लिखायें।

7. संपन्न लोग गिरनार यात्रायें आयोजित करें। बसों में भर-भर कर यात्रियों को नि:शुल्क यात्रायें करायें।

8. पूरे देश में रैलियाँ, अनशन, उपवास आयोजित करें। इस घटना का पुरजोर विरोध करें और अपने हक की माँग करें।

9. आपका एक छोटा सा योगदान और साहस पूरी काया पलट सकता है। याद रखें -

यदि अब भी न जागे तो मिट जायेंगे खुद ही।
दास्ताँ एक भी न होगी हमारी दास्तानों में॥

व्याख्याता एवं जैनदर्शन विभागाध्यक्ष
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ
(मानित विश्वविद्यालय)
कुतब सांस्थानिक क्षेत्र, नई दिल्ली - ११००१६

वीरायन प्रवचनमाला का शुभारंभ

सिवनी (म.प्र.) 5 नवम्बर 2004

दि.जैन धर्मशाला सिवनी में निरंतर धर्म की अमृतधारा प्रवाहित करने वाले दिगम्बर जैनाचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परम प्रभावक तत्त्वचिंतक, युवामनीषी मुनि श्री समतासागर जी महाराज द्वारा भगवान महावीर के जीवनवृत्त पर प्रकाश डालने हेतु 'वीरायन प्रवचन माला श्रृंखला' आज यहाँ प्रारंभ की गई।

प्रवचन श्रृंखला का शुभारंभ बरकतउल्ला विश्वविद्यालय भोपाल में अनेक वर्षों तक संस्कृत विभाग के प्रमुख पद को सुशोभित करनेवाले संस्कृत के उद्भट विद्वान पंडित श्री रतनचन्द्र जी के शुभहस्ते भगवान महावीर के चित्र के सम्मुख दीप प्रज्वलन द्वारा हुआ।

अपने शुभारंभ उद्बोधन में आदरणीय पंडित जी ने कहा कि यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे महाश्रमण महावीर के चित्र के सम्मुख दीप प्रज्वलन का सुअवसर प्राप्त हुआ। भगवान महावीर ने अपने चरित्र से समस्त जगत को प्रकाशित कर दिया। मुनिश्री के द्वारा 'वीरायन प्रवचन माला' के माध्यम से वह ज्ञान आपको प्राप्त होगा, जो भगवान महावीर को और भी आपके करीब लायेगा। मुनिश्री के प्रति भक्ति प्रदर्शित करते हुये धर्मनिष्ठ पंडित जी ने कहा कि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने अपने इन प्रिय शिष्य का नाम समतासागर बहुत ही सोच विचार कर रखा है वास्तव में यथानाम तथा गुणवाले समतासागर जी की समता देखकर मैं बहुत ही प्रभावित हूँ। प्रवचनकला में पारंगत मुनिश्री जब धाराप्रवाह ज्ञान की गंगा बहाते हैं तब ऐसा प्रतीत होता है मानो साक्षात् सरस्वती उनके कंठ में विराजमान हो गई हो। ऐलक श्री निश्चयसागर जी महाराज की सहज साधना और प्रसन्न मुद्रा की आपने अपने उद्बोधन में अत्यधिक सराहना की।

ज्ञातव्य है कि पण्डित जी स्वयं संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान हैं एवं वर्तमान में आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के आशीर्वाद से प्रतिभा मण्डल की ब्रह्मचारिणी बहिनों को संस्कृत का अध्ययन करा रहे हैं। मुनिश्री द्वारा चातुर्मास के दौरान जितने भी धार्मिक कार्य, पूजा विधि-विधान प्रवचन श्रृंखलायें एवं शिक्षण शिविर आयोजित किये गये, उन सभी की जानकारी चातुर्मास वर्षायोग समिति द्वारा पंडित जी को प्रदान की गई। पंडित जी ने रुचिपूर्वक जानकारी लेते हुये प्रसन्नता व्यक्त की।

मुनिश्री के प्रवचन के पश्चात् आदरणीय पंडित जी के कर कमलों से 'ज्ञान विद्या शिक्षण शिविर' में भाग लेने वाले शिविरार्थियों को प्रतीक स्वरूप प्रमाण पत्र वितरित किये गये। अंत में पंडित जी का सम्मान तिलक लगाकर शाल एवं श्रीफल तथा 'ज्ञान विद्या शिक्षण शिविर' का स्मृति चिन्ह देकर, चातुर्मास कमेटी के संयोजक डॉ.डी.सी.जैन द्वारा किया गया।

प्रेषक - राजेश बागड़, सिवनी, (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विविध श्रावकाचारों में सल्लेखना

डा. जयकुमार जैन

जैन परम्परा में मरण की सार्थकता तथा वीतरागता की कसौटी के रूप में स्वीकृत सल्लेखना सत्+लेखना का निष्पन्न रूप है। सत् का अर्थ है सम्यक् रूप से तथा लेखना का अर्थ है पतला, कृश या दुर्बल करना। आचार्य पूज्यपाद ने सल्लेखना का सामान्य लक्षण करते हुए कहा है कि अच्छी तरह से काय और कषायों को कृश करने का नाम सल्लेखना है। सल्लेखना में बाह्य शरीर और आंतरिक कषायों को उनके कारणों का त्याग करके क्रमशः कृश किया जाता है।[1] चारित्रसार आदि अन्य श्रावकाचारों में सल्लेखना के इसी लक्षण की अनुकृति है। व्रतोद्योतन श्रावकाचार में मित्र, स्त्री, वैभव, पुत्र, सौख्य और गृह से मोह को छोड़कर अपने चित्त में पञ्च परमपद में स्मरण करने को सल्लेखना कहा गया है।[2] वसुनन्दि श्रावकाचार में सल्लेखना को चतुर्थ शिक्षाव्रत स्वीकार करते हुए कहा गया है कि वस्त्रमात्र परिग्रह को रखकर शेष सम्पूर्ण परिग्रह को त्याग कर, अपने घर में या जिनालय में रहकर जब श्रावक गुरु के समीप मन, वचन, काय से भलीभाँति अपनी आलोचना करके पेय के अतिरिक्त त्रिविध आहार को त्याग देता है, उसे सल्लेखना कहते हैं।[3] श्रावक को जीवन के अंत में सल्लेखना धारण करने का विधान, प्रायः श्रावकाचार विषयक सभी ग्रंथों में किया गया है। कतिपय ग्रंथों में सल्लेखना के स्थान पर सन्यास मरण या समाधिमरण शब्द का प्रयोग हुआ है।

बाह्य काय और निरंतर कषायों के कृश करने से सल्लेखना के दो भेद कहे गये हैं - बाह्य एवं आभ्यंतर। जयसेनाचार्य ने तात्पर्यवृत्ति में कषाय सल्लेखना को भाव सल्लेखना तथा काय सल्लेखना को द्रव्य सल्लेखना कहा है। इन दोनों का आचरण सल्लेखना काल कहा गया है।[4] यहाँ यह कथ्य है कि कषाय (भाव) सल्लेखना और काय (द्रव्य)सल्लेखना में साध्यसाधक भाव हैं। अर्थात् बाह्य सल्लेखना आभ्यंतर सल्लेखना का साधन है।

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनं' अर्थात शरीर धर्मसाधना का प्रथम साधन है। किसी भी धार्मिक क्रिया की सम्पन्नता स्वस्थ शरीर के बिना संभव नहीं है। अतः जब तक शरीर धर्मसाधना के प्रतिकूल न हो जाये तब तक उसके माध्यम से मोक्षमार्ग को प्रशस्त करना चाहिए। किन्तु यदि शरीर धर्मसाधना के प्रतिकूल हो जाये अर्थात् शरीरनाश का अपरिहार्य कारण उपस्थित हो जाये तो सल्लेखना धारण कर धर्म की रक्षा करनी चाहिये। आचार्य समन्तभद्र के अनुसार यदि उपसर्ग, दुर्भिक्ष, जरा या रोग उपस्थित हो जाये और उनका प्रतिकार करना संभव न हो तो धर्म की रक्षा के लिये सल्लेखना धारण करना चाहिए। उनके अनुसार सल्लेखना का आश्रय लेना ही जीवन भर की तपस्या का ही फल है।[5] लाटी संहिता में भी व्रती श्रावक को मरण समय में होने वाली सल्लेखना अवश्य धारणीय मानते हुए जीर्ण आयु, घोर उपसर्ग एवं असाध्य रोग को सल्लेखना का काल कहा गया है।[6] पुरुषार्थानुशासन के अनुसार प्रतीकार रहित रोग के उपस्थित हो जाने पर, दारुण उपसर्ग के आने पर अथवा दुष्ट चेष्टा वाले मनुष्यों के द्वारा संयम के विनाशक कार्य प्रारंभ करने पर, जल अग्नि आदि का योग मिलने पर अथवा इसी प्रकार का अन्य कोई मृत्यु का कारण उपस्थित होने पर या ज्योतिष-सामुद्रिक आदि निमित्तों से अपनी आयु का अंत समीप जानने पर कर्त्तव्य के ज्ञानी मनुष्य को सल्लेखना धारण करना चाहिए।[7] यशस्तिलक चम्पूगत उपासकाध्ययन, चारित्रसार, उमास्वामि श्रावकाचार, हरिवंशपुराणगत श्रावकाचार आदि ग्रंथों में भी सल्लेखना का यही काल अभिप्रेत है।

श्रावकाचार विषयक ग्रंथों में सल्लेखना धारण करने की विधि का विस्तार से वर्णन किया गया है। आचार्य समन्तभद्र का कहना है कि सल्लेखना धारण करते हुए कुटुम्ब, मित्र आदि से स्नेह दूर कर, शत्रुजनों से वैरभाव हटाकर बाह्य एवं आभ्यंतर परिग्रह का त्यागकर, शुद्ध मन वाला होकर, स्वजन एवं परिजनों को क्षमा करके प्रिय वचनों के द्वारा उनसे भी क्षमा माँगे तथा पापों की आलोचना करके सल्लेखना धारण करे। क्रमशः अन्नाहार को घटाकर दूध, छाँछ, उष्णजल आदि को ग्रहण करता हुआ उपवास करे। अन्त में पंच नमस्कार मंत्र को जपते हुए सावधानीपूर्वक शरीर को त्यागे।[8] ग्रंथों में सल्लेखना की विधि में रत्नकरण्डश्रावकाचार का ही अनुकरण किया गया है। उपासकाध्ययन में कहा गया है कि जो समाधि मरण करना चाहता है, उसे उपवास आदि के द्वारा शरीर को तथा ज्ञानभावना के द्वारा कषायों को कृश करना चाहिए।[9]

सल्लेखना के प्रसंग में दो बातें ध्यातव्य हैं कि प्रथम तो सल्लेखना धीरे-धीरे करना चाहिये तथा द्वितीय इसका अभ्यास सल्लेखना ग्रहण करने से पूर्व अनशन, अवमौदर्य आदि व्रतों के द्वारा पहले से ही होना चाहिये। जीवन के अंतिम समय में श्रावक कषायों को घटाने का प्रयास तो करता ही है, किन्तु यह कार्य सहज साध्य नहीं है। यदि पूर्वाभ्यास हो तथा चिन्तन में समाधिमरण की भावना हो तो सल्लेखना को प्रीतिपूर्वक सेवन करने का ही सर्वत्र उपदेश है।

तत्वार्थसूत्र में पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों के धारक श्रावक को मारणान्तिकी सल्लेखना का आराधक कहा है।[10] जब कोई अव्रती श्रावक व्रती होकर जीवन को बिताना चाहता है तो उसे जिस प्रकार बारह व्रतों का पालन करना आवश्यक होता है, उसी प्रकार जब व्रती श्रावक मरण के समय आत्मध्यान में लीन रहना चाहता है, तो उसे सल्लेखना की आराधना आवश्यक हो जाती है। यद्यपि तत्वार्थ सूत्र में सल्लेखना का कथन श्रावक धर्म के प्रसंग में हुआ है, किन्तु यह मुनि और श्रावक दोनों के लिए निःश्रेयस् का साधन है। पं. गोविन्दकृत पुरषार्थानुसाशन में तो अव्रती श्रावक को भी सल्लेखना का पात्र माना गया है। हे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिखते हैं कि यदि अव्रती पुरुष भी समाधिमरण करता है तो उसे सुगति की प्राप्ति होती है और यदि व्रती श्रावक भी असमाधि में मरण करता है तो उसे दुर्गति की प्राप्ति होती है। "न केवल मनुष्य ही अपितु पशु भी समाधिमरण के द्वारा आत्म कल्याण कर सकता है। उदाहरण से स्पष्ट किया गया है कि अत्यंत क्रूर स्वभाव वाला सिंह भी मुनि के वचनों से उपशांत चित्त होकर और संन्यास विधि से मरकर महान् ऋद्धिवान देव हुआ। तत्पश्चात् मनुष्य एवं देव होता हुआ अंत में राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणी के वर्धमान नामक पुत्र हुआ।[12] स्पष्ट है कि सल्लेखना सबके लिए कल्याणकारी है तथा प्रीतिपूर्वक सेवन करने वाले मुनीश्वर, व्रती एवं अव्रती सब इसके अधिकारी हैं। पण्डितप्रवर आशाधर के अनुसार जन्मकल्याणस्थल, जिनमंदिर, तीर्थस्थान एवं निर्यापकाचार्य का सान्निध्य सल्लेखना के लिए उपयुक्त स्थान हैं।[13]

सल्लेखना में अनशन आदि के द्वारा शरीर को कृश करते हुए उसे त्यागा जाता है। अत: कुछ लोग इसे आत्महत्या जैसे गर्हित शब्दों का प्रयोग करते हैं। इसी कारण उन्होंने अप्रमत्तवत् हेतु देकर सल्लेखना में हिंसापने का निराकरण किया है। केवल प्राणों का विघात मात्र हिंसा नहीं है, अपितु उसमें प्रमादजन्यता आवश्यक है। अर्थात् जिस प्राण विनाश में रागद्वेष रूप प्रवृत्ति है, वहीं हिंसा है, शेष नहीं। कभी-कभी अप्रमाद में भी द्रव्यप्राणों का विघात दृष्टिगोचर होता है। मुनि के ईर्यासमितिपूर्वक गमन करने में भी क्षुद्र जीव-जंतुओं का प्राणविनाश संभव है। यह हिंसा नहीं है, क्योंकि हिंसा का प्रयोजक हेतु प्रमाद यहाँ नहीं है। सल्लेखना में भी हिंसा का प्रयोजक हेतु प्रमाद न होने से उसे आत्महत्या कहना अविचारित कृत्य है। जैनदर्शन में हिंसा रागादि विकारों का पर्यायवाची है।[14] यदि प्राणविनाश को हिंसा का लक्षण माना जायेगा तो वह अव्याप्ति और अतिप्याप्ति दोषों से दूषित होगा। अमृतचन्द्राचार्य लिखते हैं कि अवश्यंभावी मरण के समय कषायों को कृश करने के साथ शरीर के कृश करने में रागादि भावों के न होने से सल्लेखना आत्मघात नहीं है। हाँ, यदि कोई कषायविष्ट होकर श्वासनिरोध, जल, अग्नि, विष, शस्त्रादि के द्वारा प्राणों का घात करता है तो वह वास्तव में आत्मघात है। सल्लेखना में कषायों का सद्भाव नहीं है अत: वह तो अहिंसा की सिद्धि के लिए ही है।[15] मनोवैज्ञानिकों के अनुसार भी आत्महत्या में घृणा, असमर्थता, अहंकारी प्रवृत्ति, हीनता आदि भाव होते हैं। ये सल्लेखना में नहीं है। आत्मघात एक क्षणिक मनोविकृति है, जबकि सल्लेखना सुविचारित कार्य। आत्महत्या में आवेश तथा छटपटाहट होती है, जबकि सल्लेखना में प्रीति तथा स्थिरता। अत: स्पष्ट है कि सल्लेखना आत्मघात नहीं है। विविध सम्प्रदायों में प्रचलित जलसमाधि, अग्निपात, कमलपूजा, भैरवपूजा आदि द्वारा प्राणविनाश में धर्म मानने की प्रचलित प्रथायें थीं, किन्तु इन्हें सल्लेखना के समान नहीं माना जा सकता है। क्योंकि इनके मूल में कोई न कोई भौतिक आशा या अन्य प्रलोभन विद्यमान रहता है, जबकि सल्लेखना की स्थिति ऐसी नहीं है।

आचार्य समन्तभद्र के अनुसार जीवन के अंत में धारण की गई सल्लेखना से पुरुष दु:खों से रहित हो नि:श्रेयस् रूप सुख-सागर का अनुभव करता है अहमिन्द्र आदि के पद को पाता है तथा अंत में मोक्ष सुख को भोगता है।[16] अमृतचन्द्राचार्य ने सल्लेखना को धर्मरूपी धन को साथ ले जाने वाला कहा है।[17] सोमदेवसूरि सल्लेखना का महत्व प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि सल्लेखना के बिना जीवन भर का यम, नियम, स्वाध्याय, तप, पूजा एवं दान निष्फल है। जैसे एक राजा ने बारह वर्ष तक शस्त्र चलाना सीखा, किन्तु युद्ध के अवसर पर शस्त्र नहीं चला सकता तो उसकी शिक्षा व्यर्थ रही, वैसे ही जो जीवन भर व्रतों का आचरण करता रहा किन्तु अंत में मोह में पड़ा रहा तो उसका व्रताचरण निष्फल है।[18] लाटी संहिता में कहा गया है कि वे ही श्रावक धन्य हैं, जिनका समाधिमरण निर्विघ्न हो जाता है।[19] उमास्वामीकृत, श्रावकाचार, श्रावकाचारसारोद्धार, पुरुषार्थानुशासन, कुन्दकुन्द श्रावकाचार, पद्मकृत श्रावकाचार तथा दौलतराम कृत क्रियाकोष में सल्लेखना को जीवन भर में तप, श्रुत एवं व्रत का फल तथा महर्द्धिक देव एवं इन्द्रादिक पदों को प्राप्त कराने वाला कहा गया है।[20]

तत्वार्थसूत्र में जीविताशंसा, मरणाशंसा, सुखानुबन्ध और निदान इन पाँच को मारणान्तिकी सल्लेखना के अतिचार कहा गया है।[21] पूजादि देखकर जीने की इच्छा करना जीविताशंसा, पूजादि न देखकर मरने की इच्छा करना मरणाशंसा, मित्रों की प्रति अनुराग रखना मित्रानुराग, सुखों का पौन:पुन्येन स्मरण सुखानुबंध तथा तप का फल भोग के रूप मे चाहना निदान कहलाता है। यदि ये अज्ञानवश या असावधानीवश होते हैं तब अतिचार हैं तथा जानबूझ कर किये जाते हैं तो अनाचार। अतिचार से सल्लेखना में दोष उत्पन्न होता है किन्तु अनाचार से सल्लेखना नष्ट हो जाती है तथा दुर्ध्यान हो जाने से कुगति की प्राप्ति होती है। अत: सल्लेखना में शिथिलता सर्वथा त्याज्य है। यशस्तिलकचम्पूगत, उपासकाध्ययन, लाटीसंहिता, हरिवंशपुराणगत श्रावकाचार, पुरुषार्थानुशासन, धर्मरत्नाकार, क्रियाकोष आदि श्रावकाचारविषयक ग्रंथों में भी इन्हीं पाँचों अतिचारों का वर्णन है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जैन धर्म में सल्लेखना साधक की साधना का निकष है। यह तप, श्रुत, व्रत आदि का फल है तथा इसका फल सुगति की प्राप्ति है। क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी के शब्दों में सल्लेखना वस्तुत: शांति के उपासक की आदर्श मृत्यु है। एक सच्चे वीर का महान् पराक्रम है। इससे पहले कि शरीर जबाब दे, वह स्वयं समतापूर्वक उसे जबाब दे देता है और अपनी शांति की रक्षा में सावधान रहता हुआ उसी में विलीन हो जाता है।[22] सल्लेखना जीवन के परम सत्य मरण का हँसते-हँसते वरण है। मृत्यु से निर्भयता का कारण है। पं.सूरजचन्द्र जी समाधि मरण में कहते हैं -

मृत्युराज उपकारी जिय को, तन से तोहि छुड़ावै।
नातर या तन बंदीगृह में, पर्‌यो पर्‌यो बिललावै॥

अस्तु हमें सल्लेखना हो-इसी पवित्र भावना के साथ विराम।

सन्दर्भ

1. सम्यक्कायकषायलेखना सल्लेखना। कायस्य बाह्यस्याभ्यन्तराणां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च कषायाणां ततकारणहापनया क्रमेण सम्यग्लेखना सल्लेखना। - सवार्थसिद्धि 7/22
2. व्रतोद्योतनश्रावकाचार 124
3. वसुनन्दिश्रावकाचार, 271-272
4. आत्मसंस्कारानन्तरं तदर्थमेव क्रोधादिकषायरहितानन्तज्ञाना-दिगुणलक्षणपरमात्मपदार्थे स्थित्वा रागादिविकल्पानां सम्यम्लेखनं द्रव्यषल्लेखन्य तनूकरणं भावसल्लेखना, तदर्थकायक्लेशानुष्ठानं, तदुभयाचरणं स सल्लेखनाकाल:। - पञ्चास्तिकाय, तात्पर्यवृत्ति।
5. रत्नकरण्डश्रावकाचार, 122-123
6. लाटीसंहिता, 232-233
7. पुरुषार्थनुशासन, 99-100
8. रत्नकरण्डश्रावकाचार, 124-128
9. यशस्तिलकचम्पूगत उपासकाध्ययन, 863
10. अणुव्रतोऽगारी। दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवा-सोपभोगपरिभोगातिथिव्रतसम्पन्नश्च। मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता। - तत्वार्थसूत्र 7/20-22
11. पुरषार्थानुशासन, 6/113
12. वही, 6/144-116
13. सागरधर्मामृत, 8/23
14. अप्रादुर्भाव: खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति। तेषमेवोत्पत्ति: हिंसेतिजिनागमस्य संक्षेप:॥ पुरुषार्थासिद्धपुपाय, 44
15. वही, 177-179
16. रत्नकरण्डश्रावकाचार, 130-131
17. पुरुषार्थसिद्धयुपाय, 175
18. यशस्तिलकचम्पूगत उपासकाध्ययन, 865-866
19. लाटीसंहिता, 5/235
20. द्रष्टव्य-उमास्वामिश्रावकाचार, 463, श्रावकाचारसारोद्वार 3/351, पुरुषार्थानुशासन 6/111, कुन्दकुन्द श्रावकाचार 12/4
22. मुक्ति पथ के बीज

सम्पादक : 'अनेकान्त'
261/3, पटेलनगर मुजफ्फर नगर (उ.प्र.)

भावना

श्री क्षुल्लक ध्यानसागर जी

हमारे कष्ट मिट जाएँ, नहीं यह भावना स्वामी।
डरें न संकटों से हम, यही है भावना स्वामी॥
हमारा भार घट जाये, नहीं यह भावना स्वामी।
किसी पर भार ना हों हम, यही है भावना स्वामी॥

फले आशा सभी मन की, नहीं यह भावना स्वामी।
निराशा हो न अपने से, यही है भावना स्वामी॥
बढ़े धन-संपदा भारी, नहीं यह भावना स्वामी।
रहे संतोष थोड़े में, यही है भावना स्वामी॥

दु:खों में साथ दे कोई, नहीं यह भावना स्वामी।
बनें सक्षम स्वयं ही हम, यही है भावना स्वामी॥
दुखी हों दुष्ट जन सारे, नहीं यह भावना स्वामी।
सभी दुर्जन बनें सज्जन, यही है भावना स्वामी॥

मनोरंजन हमारा हो, नहीं यह भावना स्वामी।
मनोमंजन हमारा हो, यही है भावना स्वामी॥
रहे सुख शांति जीवन में, नहीं यह भावना स्वामी।
न जीवन में असंयम हो, यही है भावना स्वामी॥

फले-फूले नहीं कोई, नहीं यह भावना स्वामी।
सभी पर प्रेम हो उर में, यही है भावना स्वामी॥
दु:खों में आपको ध्याएँ, नहीं यह भावना स्वामी।
कभी न आपको भूलें, यही है भावना स्वामी॥

जीवन-किताब

इंजी. जिनेन्द्र कुमार जैन

एक किताब है
मेरा जीवन
इसके कुछ पृष्ठ भरे हैं
और कुछ खाली
भरे हुए पृष्ठ
मैंने ही कभी
अपने हाथों से भरे हैं
शेष खाली पृष्ठों को
हम चाहें तो भरें या चाहें तो खाली छोड़ दें
ज्यों की त्यों धीर दीनि चँदरिया की तरह।
भरेंगे तो पढ़ना पड़ेगा
न भरें तो नहीं।
जो पृष्ठ भरे हैं
उन्हें एक बार
ध्यान देकर
पढ़ समझ लें तो
दुबारा पढ़ना नहीं पड़ेगा
दोहराना नहीं पड़ेगा
अन्यथा
बारबार पढ़ना
दोहराना पड़ेगा।
अत: जितना कम भरें
जीवन-किताब को
उतना ही अच्छा है।

पद्मनाभ नगर, भोपाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृत वाङ्मय में अहिंसा की अवधारणा

डॉ.रामकृष्ण सराफ

डॉ. रामकृष्ण जी सराफ संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। आप भोपाल के शा. हमीदिया स्नातकोत्तर महाविद्यालय में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष रह चुके हैं। भारतीय और पाश्चात्य दर्शनों में आपकी गहरी पैठ है। जैनधर्म, दर्शन और संस्कृति से आप बाल्यकाल से ही जुड़े रहे हैं। अतः अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह जैसे जैन सिद्धान्तों के आप मर्मज्ञ हैं। प्रस्तुत आलेख में आपने जैन-जैनेतर संस्कृत वाङ्मय में अहिंसा की अवधारणा का शोधपरक अनुशीलन किया है, जो पाठकों के ज्ञान में अनायास अभिवृद्धि करेगा।

सम्पादक

इतिहास एवं साहित्य दोनों इसके साक्षी हैं, कि मानवता की संरक्षा और उसके विकास में आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों की सदैव सर्वोच्च प्रतिष्ठा रही है। जब-जब मानवता और मानवीय मूल्यों के अस्तित्व पर प्रहार हुआ है और मानव सभ्यता के पैर लड़खड़ाये, तब-तब उसकी रक्षा हेतु हर समय भूतल पर किसी न किसी आध्यात्मिक धार्मिक प्रेरणापुंज का अभ्युदय अवश्य हुआ है। मर्यादा पुरूषोतम राम, कर्मयोगी कृष्ण, अहिंसावतार भगवान् महावीर, सम्यक् सम्बुद्ध गौतम बुद्ध सभी ने अपने-अपने युग में अवतरित होकर युग के अनुसार अधर्म प्रतिकार, कर्त्तव्याचार, करुणा, विश्वशांति, विश्वबन्धुत्व एवं विभिन्न प्राणियों के बीच प्रेम, सहिष्णुता तथा सह अस्तित्व **जियो और जीने दो** का दिव्य संदेश संसार को दिया है।

विश्वशांति, विश्वबन्धुत्व तथा विश्व के विभिन्न जीवधारियों के बीच सहिष्णुता और सह अस्तित्व की भावना बिना अहिंसा के संभव नहीं है। अहिंसा की भावना भारत देश के लिए कोई नवीन परिकल्पना नहीं है, प्रत्युत इसकी जड़ें तो इस देश में अत्यंत गहरी हैं। हमारी संवेदनशीलता जगत में विख्यात है। अहिंसा का आदर्श भारत के समक्ष वैदिक काल से ही रहा है।

अहिंसा की उदात्त अवधारणा को निखिल संस्कृत वाङ्मय में न केवल सम्यक् समादर प्राप्त है, प्रत्युत जीवन में उसे आत्मसात् करने की प्रवृत्ति भी परिलक्षित होती है। अहिंसा की यह पवित्र भावना वैदिक साहित्य तथा लौकिक संस्कृत साहित्य-दोनों में समान रूप से समुपलब्ध है कहीं स्पष्ट रूप से तो कहीं सांकेतिक रूप में।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में निम्नांकित मंत्र आता है:-

अदितिर्धौरदितिरन्तरिक्ष,
मदितिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना,
अदितिजातमदितिर्जनित्वम्।।[1]

मंत्र में ऋषि का वचन है, कि अदिति स्वर्ग है, अदिति अंतरिक्ष है, अदिति माता है, वह पिता है, वह पुत्र है। सारे देवता और पंचजन अदिति हैं। सारे उत्पन्न पदार्थ अदिति हैं और भावी पदार्थ भी अदिति हैं। मंत्र में अदिति को संसार मात्र कहा गया है। भूतकाल की समस्त वस्तुएँ अदिति हैं और आगे होने वाली वस्तुएँ भी अदिति हैं। ऋग्वेद का यह मंत्र सर्वेश्वरवाद का आदर्श उपस्थित करता है। भारत की नैतिकता का मूल ही सर्वेश्वरवाद है। सभी प्राणियों में पेड़-पौधों में तथा अन्य सभी पदार्थों में अदिति की सत्ता स्वीकारने से अहिंसा की भावना का उदय होता है। वैदिक ऋषि ने सृष्टि में एक तत्व के सर्वव्याप्त होने का संदेश दिया है, जो अपने अनेक रूपों में विद्यमान है। इस प्रकार अहिंसा की भावना का संकेत हमें ऋग्वेद में मिल जाता है।

ऋग्वेद के ही दशम मण्डल में यज्ञ शब्द का प्रभूत प्रयोग मिलता है। यहाँ यज्ञ शब्द पूजा अथवा पवित्र के ही अर्थ में आया है। ऋषि ने उक्त सूक्त में मानसी कल्पना के द्वारा सृष्टि यज्ञ का स्वरूप प्रस्तुत किया है। जिसमें सृष्टि के विभिन्न पदार्थों का उत्पन्न होना बतलाया गया है। यहाँ भौतिक यज्ञ के स्थान पर आध्यात्मिक यज्ञ की प्रतिष्ठा निरूपित हुई है, जिसमें किसी भी प्रकार की हिंसा अथवा बलि के लिए कोई स्थान नहीं है।

ऋग्वेद के दशम मण्डल में ही सूक्त संख्या 134 के मंत्र संख्या सात में ऋषि का वचन है, हे देवो न तो हम हिंसा करते हैं, न विद्वेष करते हैं, अपितु वेद के अनुसार आचरण करते हैं तिनके जैसे तुच्छ प्राणियों के साथ भी मिलकर कार्य करते हैं।[2] वेदों में सर्वत्र ही हिंसा कर्म की निन्दा की गयी है एवं अहिंसाचरण को प्रशस्त ठहराया गया है। वैदिक वाङ्मय अहिंसा एवं लोक कल्याण की उदात भावना से ओतप्रोत है। **मा हिंस्यात् सर्वभूतानि** यह वेदों का स्पष्ट आदेश है।

ब्राह्मण ग्रंथों में भले ही यज्ञ-यागों का विधान हो, किन्तु परवर्ती आरण्यक वाङ्मय से यज्ञ यागों के प्रति विरक्ति के संकेत मिलने लगते हैं। आरण्यकों का प्रतिपाद्य विषय यज्ञ नहीं प्रत्युत यज्ञ - यागों के भीतर विद्यमान आध्यात्मिक तथ्यों की मीमांसा है। इसी का पूर्ण विकास उपनिषदों में मिलता है। भारतीय तत्त्व ज्ञान का मूल स्त्रोत होने का गौरव उपनिषदों को ही प्राप्त है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय मनीषा ने तत्त्व ज्ञान का अधिकारी उसे ही ठहराया है जिसे सम्पूर्ण वेदों का अर्थज्ञान प्राप्त हो, जिसका अन्त:करण काम्य एवं निषिद्ध कर्मों के पारित्यागपूर्वक नित्य-नैमित्तिक, प्रायश्चित तथा उपासना कर्मों के द्वारा निष्कलुष हो गया हो, तथा जो नित्यानित्यवस्तुविवेकादि साधन चतुष्टय से सम्पन्न हो।[3] तत्त्व ज्ञान के अधिकारी के लक्षण विवेचन के अंतर्गत उसका निषिद्ध कर्मों से पूर्णत: मुक्त होना अनिवार्य तत्त्व माना गया है। इसका तात्पर्य यह है कि तत्त्वज्ञान के अधिकारी के लिए किसी भी प्रकार के हिंसा कर्म से निर्लिप्त होना अपरिहार्य है। यह तथ्य आत्मतत्त्व के जिज्ञासु के लिए अहिंसाचरण को दृढ़तापूर्वक रेखांकित करता है। तत्त्वज्ञान के अधिकारी की पात्रता का विवेचन भी उसके जीवन में अहिंसा की अनिवार्यता की पुष्टि करता है एवं हिंसाकर्म का निषेध करता है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में अश्वमेधयज्ञ चर्चा के प्रसंग में उषा की आराधना का उल्लेख है। वहाँ बतलाया गया है कि उषा की आराधना अश्व के शिर के रूप में की जानी चाहिए। सूर्य की उसकी आँख के रूप में एवं वायु की उसके प्राण के रूप में।[4] ऐसी आराधना बिना यज्ञ किये ही अश्वमेधयाग का फल प्रदान करती है। बृहदारण्यक उपनिषद् में प्रस्तुत उषा की आराधना से हिंसा को स्पष्ट रूप से नकारा गया है। यज्ञ अनुष्ठानादि के विरुद्ध क्रांति ने ही उपनिषद् विद्या को प्रतिष्ठित किया है।

वेदाङ्ग वाङ्मय में वैदिक शब्दों के निर्वचन की दृष्टि से निरुक्त शास्त्र का विशिष्ट महत्त्व है। निर्वचन के क्षेत्र में निरुक्तकार महर्षि यास्क का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनका समय ई.पू. सातवीं शती माना गया है। अपने ग्रंथ में **अध्वर** शब्द का निर्वचन प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं **अध्वर इति यज्ञ नाम। ध्वरति: हिंसा कर्मा तत्प्रतिषेध:।**[5] महर्षि यास्क ने स्पष्ट रूप से उद्घोष किया है कि, यज्ञ वह उपक्रम हैं, जहाँ हिंसा के लिए कोई स्थान नहीं है। प्रत्युत उसका वहाँ पूर्ण निषेध है। **यज्ञ** शब्द के लोक प्रचलित अर्थ के विपरीत निरुक्तकार के द्वारा **यज्ञ** शब्द की इस प्रकार की मौलिक व्याख्या किया जाना निश्चित ही उनके क्रांतिकारी अहिंसा प्रधान चिन्तन का परिचायक है।

यास्क के पश्चात् ई.पू. छठवीं शताब्दी में इस देश में श्रमण संस्कृति का उदय होता है। श्रमण संस्कृति में **यज्ञ** कर्म का पूर्ण बहिष्कार है। भगवान् महावीर और बुद्ध ने तो यज्ञाचार की प्रभूत रूप से आलोचना की तथा उसे सर्वथा अनुपादेय ठहराया। यज्ञ शब्द के प्रचलित अर्थ से हटकर वैदिककाल से लेकर महावीर और बुद्ध के युग तक बार-बार इस प्रकार की व्याख्या प्रस्तुत करने की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि **यज्ञ** शब्द सम्भवत: अपने मूल अर्थ से हटता हुआ प्रतीत हो रहा था और केवल बाह्याडम्बर पूर्ण अपने रूढ़ अर्थ में उलझकर रह गया था, जिसमें आलम्भन पक्ष / बलिकर्म पर ही बल दिया जा रहा था और इसे ही यज्ञ का वास्तविक रूप मान लिया गया था।

यह भ्रांति सम्भवत: इस कारण से उत्पन्न हुई होगी कि **यज्** धातु का अर्थ है **यज्ञ** करना अथवा त्यागपूर्वक पूजा करना। यजमान से यह अपेक्षित था, कि वह यज्ञ में सम्यक् रूप से दीक्षित हो तथा अपने दूषणों से मुक्त होकर यज्ञ कार्य में प्रवृत हो। इसके लिए उससे अपने भीतर के पशुत्व का परित्याग करना अपेक्षित था। संभव है, इस महनीय अर्थ की व्यंजना को उस युग में ओझल कर दिया गया हो, और केवल उसके रूढ़िगत पक्ष को ही अपना लिया गया हो। इस प्रकार समाज में भीतर के पशुत्व को त्यागने के स्थान पर बाहर के पशु की बलि दी जाने लगी। और यज्ञ में अहिंसा के स्थान पर हिंसा का प्रवेश हो गया। यह प्रवृत्ति जब देश की आचार पद्धति में गहरी पैठ करती प्रतीत हुई, तो विचारकों को सोचने के लिए बाध्य होना पड़ा और आरण्यक युग से लेकर महावीर बुद्ध के युग तक निरंतर वैचारिक संघर्ष चला। हिंसाकर्म की चारों ओर निन्दा होने लगी और अहिंसा के वातावरण की सृष्टि हुई।

आर्ष वाङ्मय में वाल्मीकि रामायण का स्थान सर्वप्रथम है। इसे आर्ष काव्य भी कहते हैं। इस काव्य का आधार ही अहिंसा भावना है। आदिकवि वाल्मीकि ने तमसा के तट पर एक व्याध को प्रणयासक्त क्रौञ्चयुगल में से नर विहंग को शराहत करते देखा, तो वे तत्काल दयाद्रवित हो गये एवं क्रूर व्याध के इस हिंसा रूप कुत्सित कर्म की अत्यंत कठोर शब्दों में उन्होंने निंदा की।[6] रामायण काव्य में महर्षि ने अहिंसा की भावना को प्रमुख रूप से उजागर किया है।

वाल्मीकि रामायण के अरण्यकाण्ड में एक प्रसंग आता है, जहाँ सीता अपने पति श्री राम को हिंसाकर्म से विरत होने के लिए आग्रह करती हैं। श्रीराम से वे कहती हैं, कि "आपने दण्डकारण्यवासी ऋषियों की रक्षा के लिए राक्षसों का वध करने की प्रतिज्ञा की है। आपको इस घोर कर्म के लिए प्रस्थित हुआ देख मेरा मन व्याकुल हो उठा है। क्योंकि परहिंसा रूप कर्म भयंकर होता है। राजा के लए यह कर्म भले ही न्याय संगत हो, किन्तु आप तो सम्प्रति तापसवृतिधारण किये हुए हैं।" इस आधार पर सीता श्रीराम से राक्षस वध रूप हिंसाकर्म से विरत होने एवं अहिंसाचरण करने का अनुरोध करती हैं तथा तपोवन में वानप्रस्थोचित नियमों का पालन करते हुए जीवन यापन करने का उनसे आग्रह करती हैं।[7] सीता के द्वारा अहिंसा का समर्थन कराकर आदिकवि ने अहिंसा के प्रति अपनी प्रगाढ़ आस्था को आविष्कृत किया है।

अयोध्याकाण्ड में बालिमुनि के साथ वार्तालाप प्रसंग में श्रीराम के द्वारा भी अहिंसा की प्रशंसा की गयी है। वे कहते हैं कि, "जो धर्म में तत्पर रहते हैं, सत्पुरुषों का साथ करते हैं, तेज से सम्पन्न हैं, जिनमें दान रूपी गुण की प्रधानता है, जो कभी किसी प्राणी का वध नहीं करते तथा जो मल संसर्ग से रहित हैं ऐसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रेष्ठ मुनि ही संसार में पूजनीय होते हैं।[8] युद्धकाण्ड में युद्ध के पूर्व श्रीराम का अंगद को शांति प्रस्ताव लेकर रावण के दरबार में भेजना भी उनकी शांति प्रियता, अहिंसा प्रियता का सूचक है। रघुवंशियों की राजधानी के अवधपुरी नाम में भी अहिंसा की अभिव्यंजना है। अर्थात् अवध पुरी वह पुरी है जहाँ वध अथवा हिंसा सर्वथा निषिद्ध है।

निखिल महाभारत में क्रोध एवं अक्रोध अथवा हिंसा एवं अहिंसा के बीच निरंतर चल रहे द्वन्द का निरूपण है। वहाँ कहा गया है, कि क्रोध में मनुष्य अवध्य पुरुषों का भी वध कर डालता है।[9] महाभारत में दुर्योधन समस्त दुरितों के मूल क्रोध की प्रतिमूर्ति है। कौरव पक्ष के भीष्म, द्रोण, विदुर, धृतराष्ट्र जैसे विवेकीजन दुर्योधन को क्रोध को त्यागने तथा पाण्डवों से मैत्री स्थापित करने का परामर्श देते हैं। स्वयं श्री कृष्ण का युद्ध के पूर्व दुर्योधन के पास शांति प्रस्ताव लेकर जाना उनका अहिंसा का समर्थन एवं भावी हिंसा तथा भीषण रक्तपात को रोकने का एक श्लाध्य प्रयास था। किन्तु भयंकर क्रोध के वशीभूत दुर्योधन को यह कभी रास नहीं आया। परिणामस्वरूप हुआ महाभारत युद्ध एवं उसमें हुआ असंख्य निरीह प्राणियों का अकारणसंहार। महाभारत में कहा गया है, कि विजय सदा क्षमावन् साधु पुरुष की होती है।[10] महाभारत युद्ध में क्षमावीर युधिष्ठिर की विजय इसका प्रमाण है।

इसीलिए महाभारत में हिंसा कर्म की निन्दा की गयी है एवं अहिंसा सर्वत्र प्रशंसनीय है। मानव हिंसा तो निन्दनीय कर्म है ही, पक्षु-पक्षियों का वध तथा वृक्षों का छेदन भी हिंसा के अन्तर्गत आता है।[11] वन पर्व में मार्कण्डेय मुनि और धर्मव्याध के बीच हुई वार्ता में धर्मव्याध अहिंसा की प्रशंसा करते हुए कहता है, कि अहिंसा और सत्य भाषण ये दो गुण समस्त प्राणियों के लिए अत्यंत हितकर हैं। अहिंसा तो महान् धर्म है और वह सत्य में प्रतिष्ठित है।[12] अनुशासन पर्व में कहा गया है, कि देवता ऋषि और ब्राह्मण सदा अहिंसा धर्म की प्रशंसा करते हैं।[13] ब्रह्मवादी पुरुषों ने मन, वचन एवं कर्म से हिंसा न करना तथा आमिष त्याग इन चार उपायों से अहिंसा धर्म का पालन करने का निर्देश दिया है। इनमें से किसी एक अंश की भी कमी रह जाये, तो अहिंसा धर्म का पालन नहीं होता।[14] किसी भी क्षुद्र से क्षुद्र जंतु अथवा वनस्पति को तो दुःख पहुँचाना हिंसा है ही किसी को वाणी से दुःख पहुँचाना भी हिंसा है। इनसे अपने को बचाना ही अहिंसा आचरण है। इसीलिए महाभारत में अहिंसा को परमधर्म, परम सत्य कहा गया है।[15]

गीता में भी हिंसा कर्म की निन्दा एवं अहिंसा की प्रशंसा की गयी है। गीता के प्रथम अध्याय में ही शत्रु पक्ष की ओर से युद्ध में उपस्थित अपने बंधुबांधवों को न मारने की अर्जुन के द्वारा इच्छा प्रकट की जाना उनका हिंसा कर्म को अनुचित एवं अहिंसा को उपादेय ठहराता है।[16] सोलहवें अध्याय में दैवी सम्पदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षणों की गणना करते हुए अहिंसा को प्रथम स्थान पर रखा गया है।[17] जो अहिंसा के प्रकृष्ट महत्व को रेखांकित करता है। गीता में शरीर तप, वाक्तप एवं मानस तप - इन तीन सात्विक तपों की चर्चा की गयी है।[18] वहाँ अहिंसा की परिगणना शरीरतप के अंतर्गत हुई है।[19] इस प्रकार गीता में अहिंसा को दिव्य सम्पदा की श्रेणी में रखा गया है।

मनुस्मृति में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शुचिता तथा इन्द्रिय निग्रह को चारों वर्णों के लिए धर्म रूप ठहराया गया है।[20] स्मृतिकार मनु की मान्यता है, कि अहिंसा, इंद्रियों के प्रति अनासक्ति वेदानुमोदित आचार तथा कठिन तपश्चर्या से परम पद की प्राप्ति होती है।[21] उन्होंने अहिंसा को धर्माचरण तथा आत्मतत्व की साधना के लिए सर्व प्रमुख माना है।

महाकाव्यों में भी अहिंसा कर्म की प्रतिष्ठा है। रघुवंश महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में महाराज दिलीप के गोसेवा प्रसंग में कवि कालिदास ने संकेत दिया है कि महाराज दिलीप के वन में प्रवेश करते ही वहाँ के वन्य प्राणियों के क्रूर स्वभाव में परिवर्तन के संकेत मिलने लगते हैं। कालिदास कहते हैं कि वन में हिंसक व्याघ्रादि पशुओं ने महाराज दिलीप के व्यक्तित्व के प्रभाव से दुर्बल मृगादि पशुओं को सताना छोड़ दिया था।[22] हिंसा कर्म तो बहुत दूर की बात थी। यहाँ दिलीप के द्वारा गोसेवा प्रसंग में कवि ने अहिंसा वृत्ति की महत्ता को प्रतिष्ठापित किया है।

महाकवि अश्वघोष बौद्ध धर्म के अनुयायी एवं प्रखर प्रवक्ता रहे हैं। वे बौद्ध धर्म के सिद्धांतों के प्रतिपादक आचार्य हैं। उनकी काव्यकृतियों में बौद्धमत का सहज विवेचन मिलता है। दार्शनिक सिद्धांतों की बोझिलता से विहीन उनके काव्यों में हिंसा के लिए कोई स्थान नहीं है। बुद्ध चरित के द्वितीय सर्ग में वर्णन है, कि राजा शुद्धोदन के राज्य में कोई भी हिंसा नहीं करता था।[23] स्वयं राजा शुद्धोदन अपना यज्ञकार्य हिंसा रहित विधि से सम्पादित करते थे।[24] सौन्दरनन्द के प्रथमसर्ग में उल्लेख है, कि महात्मा कपिल गौतम के हिमालय अंचल में स्थित आश्रम में हिंसक पशु मृगों के साथ विहार करते थे।[25] वहाँ कोई हिंसा नहीं करता था। तृतीय सर्ग में उल्लेख है कि तथागत के प्रभाव से परवधोपजीवी व्याघ्र भी सूक्ष्म जंतु की हिंसा से विरत था।[26] वहीं यह भी उल्लेख है कि मुनि के आश्रम में सभी जन परम कल्याणकारी दस सुकर्मों का आचरण करते थे।[27] इन दस सुकर्मों में प्राणातिपातविरति अर्थात पर हिंसावर्जन सर्वप्रथम सुकर्म माना गया है। इस विवरण से महाकवि अश्वघोष की अहिंसा के प्रति आस्था अभिव्यक्त होती है। जो उनके दोनों महाकाव्यों में सर्वत्र प्रतिबिम्बित है।

किरातार्जुनीय महाकाव्य के छठे सर्ग में महाकवि भारवि ने लिखा है, कि इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या करते समय अर्जुन ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवादि की हिंसा का परित्याग कर दिया था।[28] इससे ज्ञात होता है, कि तपस्वी अर्जुन ने अपने महत् उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अहिंसा व्रत का आचरण किया था।

नैषधचरित के प्रथम सर्ग में खिन्न मन नल अपने चित्तविनोद के लिए उपवन में जाता है। वहाँ तड़ाग पर एक स्वर्णिम हंस को देखकर उसे पकड़ लेता है। पहिले तो वह हंस राजा नल के हाथ से बच निकलने का प्रयास करता है किन्तु उसमें जब वह विफल रहता है तब वह राजा नल के उस कृत्य को अनुचित ठहराते हुए उससे प्राणत्राण का निवेदन करता है। दैव को सम्बोधित करते हुए हंस कहता है कि मैं ही जिसका इकलौता पुत्र हूँ ऐसी वृद्धावस्था से पीड़ित मेरी माता है तथा नवप्रसूता पतिव्रता मेरी प्रिया है। उन दोनों का मैं ही एक मात्र सहारा हूँ। ऐसे मुझ निरीह को मारने में आपको करुणा क्यों नहीं आती।[29] वह कहता है कि उसकी मृत्यु से उसकी असहाय वृद्धा माता, नवप्रसूता पत्नी एवं नवजात शिशुओं को अनाथ ही समझो क्योंकि उन सबका एक मात्र सहारा वह ही है। इतना कहते हुए वह निश्चेतन हो जाता है। हंस को इस अवस्था में पाकर नल नरेश का करूणा जनित अहिंसा भाव जागता है तथा वह हंस को तत्काल मुक्त कर देता है। महाकाव्य में श्रीहर्ष को एक हंस पक्षी के माध्यम से राजा नल के मन में अहिंसा भाव को जाग्रत करने में अच्छी सफलता मिली है। इस प्रकार महाकाव्यों में अहिंसा भाव की पर्याप्त अभिव्यक्ति है।

गीति काव्य में अहिंसा की उपादेयता को जीवन की सार्थकता के लिए स्वीकार किया गया है। नीतिशतक में मानवों के लिए कल्याणमार्ग का निर्देश करते हुए भर्तृहरि ने कतिपय सूत्रों का उल्लेख किया है। उनमें जीव हिंसा से दूर रहना तथा प्राणियों पर दया करना सम्मिलित है। जीव हिंसा निवृत्ति को तो कवि ने कल्याण साधक उपायों में सर्वप्रथम स्थान प्रदान किया है।[30] इससे ज्ञात होता है कि कवि ने अहिंसा को जीवन की सार्थकता के लिए महत्वपूर्ण माना है।

गद्यकाव्य की प्रसिद्ध कृति **कादम्बरी** भारत की समकालीन संस्कृति का उत्तम अभिलेख है। इस कृति में भी अहिंसा की महत्ता को रेखांकित किया गया है। महर्षि जाबालि के आश्रम के वर्णन प्रसंग में कवि ने परिसंख्यालंकार के माध्यम से बतलाया है कि उस आश्रम में श्यामलता (मलिनता) केवल होमाग्नि धूम में ही प्राप्त थी, अन्यंत्र नहीं। किसी व्यक्ति के आचरण में श्यामलता अर्थात् मलिनता अर्थात परहिंसादि पापवृति नहीं थी।[31] सभी अहिंसा का आचरण करते थे। इसी प्रकार तारापीडवर्णना में कहा गया है कि उसके राज्य में योगसाधन (चित्तवृत्तिनिरोध के लिए यमनियमादि अनुष्ठान) केवल मुनि ही करते थे, किन्तु पर हत्या के लिए योग साधन अर्थात गुप्त घातक आचरण नहीं होता था।[32] इससे महाकवि बाण की अहिंसा के प्रति प्रबल निष्ठा अभिव्यक्त होती है।

पंचतंत्र एवं हितोपदेश की गणना इस देश के नीतिपरक / उपदेशप्रद आख्यान साहित्य में होती है। इन कृतियों के महत्त्व को निरूपित किया गया है एवं हिंसा कर्म से दूर रहने का परामर्श है। पंचतंत्र के **काकोलूकीयम्** नामक तंत्र के अन्तर्गत चटक कपिंजल तथा शशक शीध्रग की कथा में कहा गया है, कि महात्मा पुरुषों ने अहिंसा को अपना धर्म कहा है। वहाँ अहिंसा धर्म के पालन के लिए यूक, मत्कुण, दंशादिक्षुद्र जीवों की भी रक्षा करने का आदेश है।[33] अहिंसा धर्म के परिपालनार्थ जीव हिंसा सर्वथा वर्जित है। यज्ञ में पशुबलि की निन्दा करते हुए वहीं कहा गया है, जो लोग यज्ञ में पशुओं का वध करते हैं, वे मूढ़ हैं। वे श्रुति वचन का सही अर्थ नहीं जानते। श्रुति में कहा गया है, कि **अजों** से यज्ञ करना चाहिए। यहाँ **अज** शब्द का अर्थ **सप्तवर्षी व्रीहिधान्य** है। न कि कोई पशु विशेष।[34] इस प्रकार पंचतंत्र में हिंसाचरण की जोरदार शब्दों में निन्दा की गयी है एवं अहिंसा धर्म का प्रबल समर्थन किया गया है।

हितोपदेश में अहिंसा को स्पष्ट रूप से श्रेष्ठ धर्म मानते हुए कहा गया है कि परस्पर विरोधी धर्मशास्त्रों का भी इसमें एक मत है कि अहिंसा परमधर्म है।[35] अर्थात् जीवों का वध न करना कल्याण कारक है। हितोपदेश में ही कहा गया है कि जो मनुष्य सब प्रकार की हिंसा से दूर हैं जो सब कुछ सह लेते हैं तथा जो सबके आश्रयदाता हैं वे दिव्यलोक को प्राप्त करते हैं।

संस्कृत नाटकों में भी अहिंसा धर्म के परिपालन के संकेत मिलते हैं। अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक के प्रथम अंक में जब राजा दुष्यंत कण्व मुनि के आश्रम में मृग का आखेटक करते हुए प्रवेश करता है तो आश्रम से "मृग को मत मारो" - यह आवाज सुनाई देती है।[36] इससे संकेत प्राप्त होता है कि कण्व मुनि के आश्रम में मृगों अथवा प्राणि वध का निषेध था।

कालीदास ने तो पौधों तथा वृक्षों से फूल पत्तियाँ, तोड़ने को भी पीड़ा कर्म / हिंसा कर्म माना है। इसीलिए कालिदास की शकुन्तला आश्रम में पौधों अथवा वृक्षों से कोमल पल्लवों को नहीं तोड़ती भले ही उसे पत्र-पुष्पों से अपने को अलंकृत करना प्रिय था।[37] महाकवि कालिदास की अहिंसा परिकल्पना का परिक्षेत्र अत्यंत व्यापक रहा है।

विक्रमोर्वशीय नाटक के पंचम अंक में एक प्रसंग आता है, जहाँ महाराज पुरूखा के पुत्र कुमार आयु ने महर्षि च्यवन के आश्रम में रहते हुए एक पक्षी को अपने बाण का निशाना बनाया था। कुमार आयु का यह आचरण आश्रम विरूद्ध था। अत:महर्षि च्यवन के द्वारा उसे आश्रम से तत्काल निष्कासित कर दिया गया था।[38] संवेदनशील कालीदास प्राणि हिंसा को कभी क्षम्य नहीं मानते।

नाटककार शूद्रक की हिंसा कर्म का समर्थन नहीं करते। वे चाण्डाल कुल में उत्पन्न होने मात्र से किसी को चाण्डाल नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानते वरन् चाण्डाल उसे कहते हैं जो सज्जनों को प्राणांत कष्ट पहुँचाते हैं।[39] जैसा कि खलनायक शकार ने नायक चारुदत्त को पहुँचाया था। किन्तु मरण तुल्य कष्ट सहने के बाद भी चारुदत्त का महापराक्षी शकार को अभय दान / जीवन प्रदान करना उनकी अहिंसा प्रवृत्ति को उद्घाटित करता है।[40] इस प्रकार नाटककार शूद्रक ने भी अपने नाटक में चारुदत्त के द्वारा उदात्त अहिंसा धर्म का ही समर्थन कराया है।

नागानंद नाटक के पंचम अंक में गरुड़ असंख्य प्राणियों की हिंसा करने के कारण पश्चाताप करता है तथा नाटक के नायक जीभूत वाहन से उससे मुक्ति के उपाय हेतु प्रार्थना करता है। जीमूतवाहन उसे भविष्य में हिंसा कर्म से विरत होने का उपदेश देता है। गरुड़ प्रतिज्ञा करता है कि आगे कभी भी वह हिंसा चरण नहीं करेगा ।[41]इस प्रकार नागानंद नाटक मे हिंसा व्यापार में निमग्न गरुड़ का अहिंसा धर्म में प्रवृत्त होने का प्रभावी वर्णन मिलता है।

अहिंसा इस देश की संस्कृति है। अहिंसा हमारी जीवन पद्धति है। अहिंसा भारत का दर्शन है। अहिंसा परम सत्य है। अहिंसा परम तप है। अहिंसा परम धर्म है। अहिंसा इस देश की पहचान है। भारतीय दर्शन का पोषक तत्त्व सार्वभौमिक कल्याण चेतना है और अहिंसा की अवधारणा उसका मूलाधार है। अहिंसा की इस मांगलिक अवधारणा से संस्कृत वाङ्मय ओतप्रोत है।

सन्दर्भ

1. ऋ. १-८९-१०, अथर्ववेद में यह मंत्र क्रम संख्या ७-६-१ पर प्राप्त है।
2. नकिर्देवा मिनीमसि न किरा योपयामसिमन्त्रश्रुत्यं चरामसि। पक्षेमिरपिकक्षभिरत्राभि सं रभामहे॥ वही-वही-१३४-७।
3. वेदान्तसार: सम्पादक रामशरण शास्त्री, चौखम्बा, विद्याभवन बनारस प्रकाशन (१९५४)पृ. 3
4. उषा वै अश्वस्य मैध्यस्य शिर: । सूर्यश्चक्षुर्वात: प्राण: बृहदारण्यकोपनिषद् १-१-१
5. निरुक्त पंचाध्यायी - सम्पादक म.म.छज्जूराम शास्त्री पृ.२५
6. वाल्मीकि बाल.-सर्ग 2-पद्य संख्या 5
7. वाल्मीकि. अरण्य.सर्ग 9 पद्य संख्या १०,१२,२५, ३१, ३२
8. धर्मरता: सत्पुरुषै: समता
   स्तेजस्विनो दानगुणप्रधाना:।
   अहिंसका वीतमालश्च लोके
   भवन्ति पूज्या मुनय: प्रधाना: ॥ वाल्मीकि. अयोध्या. १०९-३६
9. महाभारत वन. २९-१९
10. महा.वन. २९- १४
11. महा.वन २०८-१६, १७,२२
12. महा. वन. २०७-७२
13. महा.अनुशासन. ११४-२
14. महा. अनुशासन ११४-४
15. महा. अनुशासन ११५-२३
16. गीता-१-३५
17. गीता १६-२,३
18. गीता १७-१४,१५,१६,१७
19. देवद्विजगुरुपूजनं शौचमार्जवम्।
    ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरंतप उच्यते॥ गीता १७-१४
20. अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिनिन्द्रयनिग्रह: एतं सामप्तिकं धर्म चातुर्वण्येऽब्रवीन्मनु: ॥ मनु. १०-६३
21. अहिंसयेन्द्रिया संग वैंदिकैंश्चेवकर्मभि:।
    तपसश्चरणैश्चाग्रै: साधयन्तीह तत्पदम्॥ वही ६-७५
22. उनं न सतवेष्वधि को बबाधेतस्मिन्वने गोप्तरि गाहमाने। रघु. २-१४
23. बुद्धचरित २-११
24. वही २-४९
25. सौन्दर. १-१३
26. वही ३-३०
27. वही ३-३७
28. किरात. ६-२२
29. नैषघ. १-१३५
30. नीति. २५
31. कादम्बरी, चौखम्बा प्रकाशन (१९५३) पृ. १२४
32. वहीं पृ.१७३
33. पंचतंत्र-काकोलूकीयम् पद्य ५
34. पंचतंत्र प्रकाशक पंडित पुस्तकालय, काशी (१९५२) पृ.३७०
35. हितोपदेश-प्रकाशक बैजनाथ प्रसाद बुक सेलर, बनारस (१९५२) पृ. ४२
36. अभिज्ञान शाकुन्तलम् - प्रकाशक ग्रंथम रामबाग, कानपुर (१९७५) पृ.३५
37. अभिज्ञान. ४-९
38. विक्रमोर्वशीयम् चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी प्रकाशन (१९५५)पृ.२१२-२१३
39. मृच्छ 0-१०-२२
40. मृच्छकटिक, चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस प्रकाशन (१९५४) पृ.६००
41. नागानंद-५-२६

आवास : ई-7/562 अरेरा कालोनी
भोपाल ४६२०१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काश्मीर की रोमांचक यात्रा का प्रसंग

जरूरत है जम्मू में दिगम्बर जैन मन्दिर स्थापना की

कैलाश मड़बैया

हाल ही में काश्मीर यात्रा का सुयोग मिला, जम्मू में हिन्दी दिवस के एक कवि सम्मेलन में भागीदारी करना थी इस बहाने काश्मीर-दर्शन का लोभ संवरण नहीं कर सका। हालाँकि लोगों ने बताया था कि धरती के इस स्वर्ग के दर्शन करने में, स्वर्गवासी होने के खतरे कम हुए हैं पर समाप्त नहीं। मेरे बेटे ने तो स्पष्ट कह दिया था जाना तो हवाई जहाज से जाओ वरना नहीं। खैर, किसी तरह जम्मू से जैट एयर वेज के विमान से श्रीनगर पहुँचा। श्रीनगर शहर के दर्शन कर यह भ्रम तो दूर हो गया कि यह धरती का स्वर्ग है पर डल झील और चश्मे शाही आदि कतिपय मुगल बगीचों का भ्रमण कर यहाँ की जल और वायु सचमुच अद्भुत लगी, अद्वितीय कहें तो भी अतिश्योक्ति नहीं होगी। 8 किलो मीटर लंबी और 4 किलो मीटर चौड़ी विशाल डल झील के किनारों का पानी तो गंदा है पर सैकड़ों 'वोट हाउस' और अगणित तैरते शिकारों ने जल और धरती पर के आवागमन का अंतर ही मिटा दिया है। 'वोट हाउस' के सुसज्जित कक्ष, बड़े-बड़े व्यापारिक शौ रूम और खान पान की व्यवस्थायें चमत्कृत करती हैं। विवाह समारोह तक इन्हीं वोट घरों में हो जाते हैं। कैफेटेरिया, चार चिनार, नेहरू पार्क, कबूतर खाना और हजरत बल आदि स्थलों के दर्शन से इसकी उपयोगिता और बढ़ी है। संध्या को इनकी रोशनी की कतारें जल परियों सी तैरती झिलमिलाती शोभायमान होती हैं। हालाँकि आतंकवादियों के खतरों में भी यहाँ रात्रि में विद्युत इन दिनों भी, घंटों के लिए गुल होना नहीं भूलती। होटलों में, गर्म कपड़ों और सूखे फलों की खरीददारी में सौदेबाजी (बार्गेनिंग) इतनी कि भलमनसाहत जवाब दे जाती है। यहाँ का प्रसिद्ध उत्पादन केशर इतने रूपों में यहाँ मिलता है कि पारखी भी काश्मीरी, ईरानी और रंगी घास वाली केशर में अंतर नहीं कर पाते। सितम्बर का महीना था अत: चारों ओर धान के पीले खेत लहलहा रहे थे, केशर की क्यारियाँ तैयार की जा रही थीं। शीतल मन्द सुगन्ध वायु पुलकित कर जाती और चिनार, चीड़, देवदारू के ऊँचे वृक्ष तो ऊँचे पहाड़ों के बीच काश्मीर की पहचान ही हैं। ऊँचे वृक्ष और ऊँचे नर नारी, स्वादिष्ट सेव और सेवों जैसे सुर्ख कपोलों वाला यहाँ का सौन्दर्य स्वभावत: सादगी भरा है। अखरोट, बादाम, खुरमानी, नाशपाती और आलू बुखारा आदि सूखे मेवों के लिए ख्यात काश्मीर की कालिकाओं का मादक सौन्दर्य सचमुच अनूठा है पर कुछ वर्षों से दो जातियों के बीच की खाईयाँ दोनों देशों की राजनीति ने गहनतम प्रदूषित कर रखी है। फलत: एक अविश्वास, एक आशंका और एक गहरी दरार बराबर फैलती ही जा रही है। चप्पे-चप्पे पर चहलकदमी करती तैनात फौज, नैसर्गिक सौन्दर्य और शांति की पीड़ा और घनीभूत कर देते हैं। एक मूल जाति को तो यहाँ से लगभग खदेड़ ही दिया गया है। घाटी में बुमश्किल 50 घर हिन्दुओं के बचे होंगे, जैन तो 5-7 घर ही रहे हैं, सिख भी सिमट चुके हैं। काश्मीरी पंडित कुछेक गाँव में कदाचित मिल जाएँ पर अधिकांशत: तो जम्मू में विस्थापित हो चुके हैं। मुस्लिम भी बटे हुए हैं कतिपय कट्टरवादियों को छोड़ दें तो बहुतों को पाकिस्तानियों द्वारा काश्मीर देश का स्वतंत्र सपना दिखाया जा रहा है। परंतु बंगला देश बनने के बाद जो सोच उस छोटे देश के बारे में बन रहा है और पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था के साथ लोकतंत्र जितना गहरे वहाँ दफनाया जा चुका है यह स्थिति देखते हुए उदार विचारों वाले कुछेक मुस्लिम भी भारत में रहना श्रेयस्कर समझते हैं, पर शंका इतनी गहरी है कि कुछ भी स्पष्ट नहीं होता। जातिगत संकीर्णता अधिक है। जम्मू घाटी से कट गया है। वह अपने को काश्मीर की कालोनी मानकर हीन भावना से ग्रस्त है। हिन्दी दिवस के कार्यक्रमों में भाग लेने आये वहाँ के बुद्धजीवियों ने कहा कि सेन्ट्रल से जो विकास के पैकेज आते हैं वह घाटी में ही उपयोग हो जाते हैं। जम्मू को तो पांव को जूती समझा जाता है। एक साहित्यक मित्र ने तो यहाँ तक कह दिया कि बकरी, पाडा और गाय की यह विसंगत त्रिजोड़ी ज्यादा नहीं चलने की। लद्दाख, काश्मीर और जम्मू को जोड़कर एक साथ बनाए गये प्रांत की ओर उनका स्पष्ट संकेत था। कदाचित् यह भावना तब से घर कर गई है जब गत शासन ने यह चर्चा छेड़ रखी थी कि जम्मू को हिमाचल से जोड़ा जा सकता है। परंतु यह वास्तविक निदान नहीं होगा।

इतिहास के आईने में काश्मीर में हिन्दू राजाओं का ही राज्य रहा है। सन 1586 में अकबर ने यहाँ अधिकार जमाया था बाद में 1819 में पंजाब केसरी रणजीत सिंह का राज्य हो गया जो 1845 तक सिखों के अधीन रहा। अंग्रेजी सत्ता के बाद डोगरा महाराजा गुलाब सिंह ने 75 लाख रूपयों में अंग्रेजों से खरीद कर यह राज्य संभाला थे और लद्दाख आदि क्षेत्रों तक राज्य विस्तार किया। गुलाब सिंहके पुत्र रणजीत सिंह और 1865 में प्रताप सिंह वहाँ राज्यासीन हुए उनके यहाँ कोई पुत्र नहीं था अत: उनकी मृत्यु उपरांत सन् 1925 में भतीजे हरी सिंह यहाँ के राजा हुए। 1947 में भारत में आजादी आई तो 22 अक्टूबर 1947 को पाकिस्तान के उकसावे पर हजारों कवालियों ने जम्मू काश्मीर पर आक्रमण कर दिया फलत: राजा हरिसिंह ने काश्मीर को भारत में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विलय करने की घोषणा कर दी। परंतु एक हिस्से पर पाकिस्तानियों ने अनधिकृत कब्जा बना ही लिया और शेष सम्पूर्ण काश्मीर भारत का हिस्सा हो गया। हालाँकि संविधान में धारा 370 ने जहाँ काश्मीरियों को विशेष दर्जा दिया वहीं पाकिस्तानियों ने मुस्लिम बहुलता के कारण साजिशन धार्मिक भावनाएँ भड़काए रखकर और सीमा पार से घुसपैठ कराकर भारत में अशांति बनाए रखी जो आज तक बरकरार है। यही नहीं पाकिस्तान के राजनीतिज्ञों ने विगत 50 वर्षों से अधिक की इस अवधि में काश्मीर को अंतर्राष्ट्रीय मुद्दा बनाने के भरपूर प्रयास किए और इसी मुद्दे को वे सत्ता पर पकड़ बनाए रखने के लिए जनभावना भड़काने में मददगार मानते हैं। जो भी हो आज लाखों फौज काश्मीर में लगाए रखकर वर्षों से जो समस्या निराकृत नहीं हो रही है मेरी राय में सभी देशवासियों को एक सा कानून बनाकर वहाँ भी सभी को जमीन खरीदने, बेचने, उद्योग चलाने के लिए और बेरोजगारों को काम देने की अनुमति देकर समस्या का स्थायी निदान निकाला जा सकता है। अब धारा 370 की वास्तव में कोई आवश्यकता नहीं रही। उदाहरण के लिए जब तक भोपाल में राजधानी का मुख्यालय नहीं था तब तक ऐसी ही समस्या यहाँ भी कमोवेश थीं, पर अब हर दृष्टि से यह एक शांत और संतुलित शहर माना जाता है। यह संतुलन बनाकर ही काश्मीर में आतंकवाद की समस्या समाप्त की जा सकती है। सम्प्रदायों का संतुलन ही वहाँ समभाव बना सकता है। वरना यह विडम्बना बहुत कचोटती है कि विगत 5-6 दशकों से जिस काश्मीर को बचाने के लिए हमारे सैनिक प्रतिदिन किसी न किसी रूप में कुर्बानी दे रहे हैं वहाँ दफन होने का भी हक नहीं? यह 7-8 लाख फौज इस तरह कम करके बचे हुए धन से भारत के ही नहीं उस हिस्से के विकास को भी नई गति मिल सकती है। हालाँकि वोट की राजनीति शायद ही ऐसी स्थिति वहाँ शीघ्र बनने दे।

यहाँ का जम्मू शहर सम्पूर्ण रूप से भारतीय परिवेश में रचा-पचा है। रघुवंशी राजा जाम्बुलोचन द्वारा बसाये जाने के कारण जम्मू कहलाया। प्रत्येक समाज के लोग जम्मू में भारतीय संस्कृति का निर्वाहन करते हैं। एक श्री विनोद कुमार जैन से जम्मू की अकादमी के सम्पादक श्री श्यामलाल रैणा ने परिचय कराया तो ज्ञात हुआ कि जम्मू में पाँच सौ स्थानक वासी जैन परिवार हैं जिनके उपासरे (चैत्यालय) भी हैं। श्वेताम्बर जैनों के भी 50 घर हैं और उनके दो जिनालय हैं, परंतु मूल दिगम्बर जैनियों के केवल चार घर हैं और दिगम्बर जैन मंदिर न तो जम्मू में हैं और न ही श्रीनगर में। यह आश्चर्य जनक था। वस्तुत: जम्मू में दिगम्बर जैन मंदिर की स्थापना नितांत आवश्यक है। हाँ, श्रीनगर के अमीराकदल मोहल्ले में विशाल जैन फैक्ट्री वालों के घर में जिन विम्ब दर्शन अवश्य उपलब्ध हो सकते हैं। सिखों के गुरूद्वारे और ईसाइयों के चर्च हैं।

यह जानकर हर्ष भी हुआ और विस्मय भी कि जम्मू में प्राचीन काल में ब्रजभाषा में ही काव्य रचना होती थी। इसमें बुंदेलों के शब्द भी बहुतायत से होते थे। यहाँ की अकादमी से प्रकाशित शीराजा का कविता विशेषांक का शुभारंभ की सन् 1612 ई. के कवि परस राम की इन पंक्तियों से हुआ है-

ओ इम होत प्रात दिन सांय रजनी,
छिन-छिन अवध घटावे है।
बीतत मास बहोर ऋत बरखे,
फिर घूमत इत आबे है।

75 चित्रगुप्त नगर, कोटरा
भोपाल ४६२००३

दुधारू मवेशियों की ५६ नस्लें लुप्त

भारत में पाई जाने वाली गाय, भैंस, भेड़ व बकरियों की पिछले करीब ६० वर्षों में लगभग ५६ देशी नस्लें लुप्त हो चुकी हैं। वैज्ञानिकों का मानना है कि पशुओं की नस्लों को लुप्त होने से बचाने की ओर ध्यान नहीं दिया गया तो देश पर पशुधन संकट के बादल मंडरा सकते हैं। साथ ही इससे सीमांत व मझोले किसानों के लिए पशुपालन मुश्किल हो जाएगा, जो कि उनके जीविकोपार्जन का आज भी गाँवों में मुख्य आधार है। दूसरी ओर, वैज्ञानिकों का कहना है कि यहाँ लुप्त हो चुकी कई नस्लों के पशु आज भी विदेशों में पाए जाते हैं और पशुधन के क्षेत्र में भारत का नाम दुनिया में रोशन किए हुए हैं।

रोम की संस्था खाद्य एवं कृषि संगठन के रिकार्ड के अनुसार, आजादी से पूर्व भारत में गायों की ६१ प्रकार की नस्लें पाई जाती थीं, जो अब केवल ३० ही बची हैं। भैंस की कुल १९ नस्लों में से अब १० नस्लें ही रह गई हैं। भैंस व गायों समेत अब तक कुल ४० नस्ल देश से लुप्त हो चुकी हैं। इसी प्रकार भेड़ की ४९ में से ४२ और बकरी की २९ में से २० नस्लें बची हैं। देश में पाए जाने वाली अन्य कई पशुओं की नस्लें भी कम हुई हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे और मझोले किसानों के लिए पशुधन उनके जीविकोपार्जन साधनों का अहम हिस्सा है। देशी नस्लों के पशु उनके लिए सस्ते व सुलभ तथा साधारण परिवेश में आसानी से पाले जा सकते हैं।

रोम के खाद्य एवं कृषि संगठन के आंकड़ों के अनुसार भारत से इतनी अधिक नस्लों का लुप्त होने का मुख्य कारण नस्ल सुधार सिस्टम में पशु प्रबंधन की शुद्धता से किसान का अनभिज्ञ होना है।

आजाद सिंह, करनाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनर्गल प्रलाप पुनः पुनः

मूलचन्द्र लुहाड़िया

दक्षिण भारत जैन सभा के द्वारा सन् 1912 में प्रकाशित एवं प्रचारित स्व. पं. नाथूराम जी प्रेमी की पुस्तक 'भट्टारक' का हिंदी अनुवाद प्रकाशित कर वितरित कर विद्वानों एवं सुधी पाठकों की भट्टारक संप्रदाय के बारे में सम्मति आमंत्रित करने जैसे विशुद्ध साहित्यिक कार्य में विद्वानश्री नीरज जी को पता नहीं कैसे अनर्थ की आशंका हुई और उन्होंने सर्वथा निराधार एवं मिथ्या दोषारोपण के रूप में अनर्गल प्रलाप प्रारंभ किया। मैंने विनय पूर्वक उनके आरोपों का उत्तर देते हुए एवं विषय पर प्रामाणिक प्रकाश डालते हुए लेख लिखा। माननीय श्री प्रेमी जी ने भट्टारक संप्रदाय में धीरे-धीरे आए दोषों की चर्चा करने के पश्चात् अपनी पुस्तक के अंत में भट्टारकों के अस्तित्त्व को उपयोगी बनाने के लिए उनके स्वरूप परविर्तन की आवश्यकता प्रतिपादित की और मैंने भी भट्टारकों के वर्तमान विकृत एवं मिथ्याभेष के स्थान पर आगम के अनुसार उनका चारित्रिक स्वरूप निर्धारण किए जाने की भावना प्रकट की थी। किंतु श्री नीरज जी ने अत्यंत चतुरता से लेख के प्रभावी अंशों, ऐतिहासिक तथ्यों एवं आगमिक सिद्धांतों की अनदेखी करते हुए दि. जैन यत्याचार संस्कृति के पवित्र वीतराग स्वरूप को दयनीय रूप से विकृत बना देने वाले एवं आरंभ परिग्रह से युक्त चर्या और भेष धारण करने वाले भट्टारकों के अंधसमर्थन में एक पुस्तक लिख डाली है। वस्तुत: आगम के अध्येता विद्वानश्री नीरज जीआगम ज्ञानके आलोक में अपनी अंतरात्मा से इस दिगम्बर जैन आचार संहिता के विरूद्ध मिथ्या भेष और मिथ्याचर्या का समर्थन और उसमें आगमानुकूल सुधार के परामर्श काअंध विरोध नहीं कर सकते थे। किंतु वे अवश्य ही पक्ष व्यामोह तथा तुच्छ स्वार्थ साधना से प्रेरित होकर ही कदाचित इस आगम विरूद्ध भेष के समर्थन में अग्रसर हुए हैं।

इस पुस्तक को पढ़कर अत्यंत दुखद आश्चर्य हुआ। श्री नीरज जी ने अपनी साहित्यिक चतुराई का भारी दुरूपयोग करते हुए पुस्तक के नामकरण में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर जी महाराज को जोड़ा है। पाठकों को धोखे में डालकर और आचार्य शांतिसागर जी महाराज के नाम से प्रभावित कर पूरी पुस्तक में लेखक विद्वान ने अपनी साहित्यिक प्रतिभा का भरपूर दुरूपयोग पाठक को व्यक्तिगत आरोपों एवं निराधार मिथ्या प्ररूपणाओं के शब्द जाल में उलझाकर मूल विषय वस्तु से दूर रखने में किया है। पाठक के सामने भट्टारकों के विरोध किए जाने का ऐसा जबर्दस्त हव्वा खड़ा किया गया है कि उनके मन में भट्टारकों के प्रति सहज सहानुभूति उत्पन्न हो सके और वे पाठक ऐसे भ्रमित हो जाएँ कि मूल विषय उनके ध्यान से खिसक जाये। प्रेमीजी की पुस्तक में मूल बिंदु यह उठाया गया है कि दि. जैन चरणानुयोग आगम के अनुसार भट्टारक का कौनसा स्थान है इसका स्पष्टीकरण होना चाहिए। दि. जैन चरणानुयोग के अनुसार चारित्र के दो भेद हैं। सकल और विकल, मुनि और श्रावक। मुनि दिगम्बर होते हैं। कपड़े वाले श्रावक होते हैं। उनके ग्यारह दर्जे या प्रतिमाएँ होती है। भट्टारक दोनों में से क्या हैं? यदि भट्टारक मुनि नहीं हैं तो वे श्रावक होने चाहिए। श्रावक हैं तो उनकी कौन सी प्रतिमा है? मुनि या क्षुल्लक ऐलक नहीं है तो हाथ में पिच्छी कैसे है? दीक्षा के समय मुनि बाद में कपड़े परिग्रह, सुविधा भोगी जीवन यह कैसा विरोधाभास है? हमने भट्टारकों का विरोध द्वेष बुद्धि से कभी नहीं किया। उनकी दोषपूर्ण आगम विरूद्ध जीवन शैली का विरोध हम नहीं कर रहे, जिनवाणी कर रही है। मूलाचार में स्वयं पतित मयूर पंखों से निर्मित पिच्छी को योगियों का चिन्ह या लिंग बताया गया है। स्वयं पतित पिच्छानां लिंग चिन्ह च योगिनाम्। भावपाहुड़ की टीका में 'जिन लिंग नग्न रूप महन' मुद्रा मयूरपिच्छि कमंडलु सहित निर्मल कथ्यते' के अनुसार मयूर पिच्छी सहित नग्न रूप ही जिन लिंग है। आचार्य कुंदकुंद ने स्पष्ट घोषणा की है कि मुनि, आर्यिका एवं उत्कृष्ट श्रावक (क्षुल्लक ऐलक) जैन दर्शन में ये तीन ही लिंग हैं। कोई चौथा लिंग जैन दर्शन में नहीं है। इन पिच्छी धारी भट्टारकों का उपरोक्त तीन लिंगों में से कौन सा लिंग है? आपका उत्तर निश्चित ही नकारात्मक होगा। जैन दर्शन में भगवत् स्वरूप आचार्य कुंदकुंद महाराज के द्वारा स्थापित आचार व्यवस्था के विरूद्ध वस्त्रधारी मठाधीश भट्टारकों का पिच्छी रखना दि. जैन आगम के पूर्णत: विरूद्ध है और मिथ्यात्व का रूप है। वस्तुत: भट्टारकों के इसविकृत एवं आगम विरूद्ध भेष एवं चर्या का समर्थन करना दि. जैन आचार संहिता के पूर्णत: विपरीत है। प्रेमी जी का और हमारा भी यह विनम्र सुझाव है कि भट्टारकों को अपनी चर्या आगम के अनुकूल संकल्प पूर्वक किसी प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर बना लेनी चाहिए और पदानुकूल आदरसत्कार प्राप्त कर दि. जैन धर्म की सच्ची प्रभावना में सहयोगी बनना चाहिए। यह तर्क कि, गत 500-600 वर्षों से भट्टारक पिच्छी रखते आए हैं इसलिए वे पिच्छी के अधिकारी हो गए हैं, वस्तुत: कुतर्क है। पहले भट्टारक आरंभ परिग्रह रहित नग्न दिगम्बर होते थे। तब पिच्छी रखने के अधिकारी थे। किंतु जब आरंभ परिग्रह वस्त्र वाहन रखने लगे तब यदि उनमें दि. जैन धर्म और जिनागम के प्रति श्रद्धा शेष है तो, जिन लिंग के अभाव में लिंग सूचक पिच्छी भी छोड़ देनी चाहिए। जीवन में अनेक वर्षों से किए जा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहे दोष, दोष ही रहते है, गुण नहीं हो जाते हैं। सैंकड़ों वर्षों से नहीं अनादि काल से जीव मिथ्यात्व और कषाय के दोषों से युक्त रहता आया है। जिस दिन वे दोष इसको दोष प्रतीत होने लगते हैं और वह पुरूषार्थ पूर्वक उन दोषों को छोड़ देता है वही दिन उसके जीवन में सौभाग्य के प्रारंभ का दिन होता है।

पुस्तक में आचार्य शांतिसागर जी का नाम लेकर आगम विरूद्ध बात को मनवाने के लिए पाठकों को गुमराह करने का षडयंत्र किया गया है। प. पू. आचार्य शांतिसागर जी के उपदेश को ध्यान से पढ़ने पर स्पष्ट हो जाता है कि पू. आचार्य श्री द्वारा भट्टारकों को मान्यता देने की बात तो बहुत दूर रही, उन्होंने अपने उपदेश में भट्टारकों को अपना भेष आगमानुकूल करने के लिए प्रेरणा दी है। उन्होंने कहा 'धर्म का रक्षण करो, समाज का रक्षण करो और साधु संतों का रक्षण करो' ये वे बाते हैं जिन्हें भट्टारक नहीं करते हैं, इसीलिए उनको यह उपदेश दिया है। इस उपदेश में परोक्ष रूप से आचार्य श्री ने वह सब कह दिया जो वे उनको कहना चाहते थे। आगम विरूद्ध भेष धारण कर अपने को मुनि कहलाने वालों को धर्म का रक्षण करने का उपदेश दिया क्योंकि वे अपने भेष से दि.जैन धर्म का अवर्णवादकर रहे हैं। पू. आचार्य श्री ने सल्लेखना के समय अपने उपदेश में सबसे अधिक बल संयम धारण करने पर दिया था। चारित्र चक्रवर्ती पुस्तक के पृष्ठ 343 से 349 तक में बार-बार संयम धारण करने की ही बात कही है। इसी प्रसंग में भट्टारक गण को भी उपदेश दिया है। पू. आचार्य श्री जिन्हें मुनि चर्या में तनिक भी शिथिलाचार सहन नहीं होता था, जिन्होंने पूरा जीवन ग्रहस्थों और मुनियों को आगम के चरणानुयोग पक्ष के अनुसार अपना आचरण बनाने की प्रेरणा देते रहने में बिताया,वे आगम चक्षु महान आचार्य आगम विरूद्ध भेष धारणकर असंयम एवं परिग्रह के साथ पिच्छी रखने वाले भट्टारकों को कैसे मान्यता प्रदान कर सकते थे? आशीर्वाद तो करूणाशील आचार्य महाराज मिथ्यादृष्टियों दुराचारियों को भी देते हैं। क्या आशीर्वाद देने मात्र से आचार्य महाराज द्वारा दुराचारियों के दुराचार को उचित मान लिया जा सकता है? दिगम्बर जैन धर्म के उन्नायक तीर्थंकर सदृश मान्यता प्राप्त महान आचार्य कुंदकुंद महाराज ने 2000 वर्ष पूर्व स्पष्ट घोषणा की थी कि दि. जैन धर्म में दि. मुनि, आर्यिका एवं क्षुल्लक ऐलक के अतिरिक्त कोई चौथा लिंग नहीं है, नहीं है, नहीं है। यह भट्टारक कौनसा लिंग है? श्री नीरज जी कम से कम यह तो बताएँ कि ये मुनि हैं या श्रावक हैं। यदि श्रावक हैं तो इनकी कौनसी प्रतिमा है? वस्तुत: नीरज जी का यह कथन कि पू. महाराज जी ने उन्हें उपदेश देकर भट्टारकों को मान्यता प्रदान की थी सरासर उन आगम चक्षु, आगम भीरू महान आचार्य श्री का निरा अवर्णवाद है। भट्टारकगण स्वयं पू. आचार्य श्री के दर्शन हेतु आए थेऔर वहाँ सेवा में रहे थे तो उन्हें दुतकारा तो नहीं जा सकता था। किंतु ऐसे आगमानिष्ठ आचार्य श्री जिन्होंने अपने गुरू का शिथिल आचरण भी सहन नहीं किया था, भट्टारकों के आगम विरूद्ध पद और भेष को वे कैसे मान्यता प्रदान कर सकते थे? अन्यत्र उन्होंने स्पष्टत: भट्टारकों द्वारा श्रावकों से धन वसूल कर निर्माल्य द्रव्य स्वयं खाने की आलोचना करते हुए उनका आहार ग्रहण करना भी स्वीकार नहीं किया। भट्टारकों के आचरण की वह स्पष्ट आलोचना आचार्य श्री द्वारा उनकी धार्मिक मान्यता को नकारने का पर्याप्त साक्ष्य है।

श्री नीरज जी ने अपनी पुस्तक के चतुर्थ संस्करण की पहली पुस्तक पुन: मुझे भेजी। संभवत: वे गर्व पूर्ण प्रसन्नता का अनभुव कर रहे होंगे कि उनकी पुस्तक के तीन संस्करण तो अत्यल्प समय में समाप्त हो गए और यह बात वे मुझे बताना चाहते थे। किंतु मेरा कहना है कि माननीय विद्वान की यह प्रसन्नता मिथ्यात्व के प्रचार की सफलता से उत्पन्न प्रसन्नता है। इस पंचम काल का यह प्रभाव स्पष्ट है कि धर्म के समीचीन स्वरूप में रूचि रखते हुए उसे ग्रहण करने वाले लोग धीर-धीरे कम होते जायेंगे। भट्टारकों की उत्पत्ति का इतिहास बताया है कि दिगम्बर साधु जब शिथिलाचार से ग्रसित होने लगे तो प्रारंभ में आहार के लिए चटाई से गुह्यांग ढकने लगे फिर लंगोट ग्रहण की और फिर धीरे-धीरे वस्त्र पहनने लगे और उसके आगे परिग्रह वाहन नौकर चाकर, मठ, छत्र आदि आदि और इस प्रकारअपरिग्रहत्व एवं संयम का स्थान परिग्रह और सत्ता ने ले लिया। परिग्रह से लिप्त होने के बाद भी साधु के चिन्ह पिछी रखकर अपना साधुवत सत्कार कराने लगे और अपने लिए जगत् गुरु महास्वामी जैसे संबोधनों का प्रयोग कराने लगे। जैन धर्म के दिगम्बर साधु के स्वरूप एवं आचार संहिता पर श्वेताम्बर परंपरा के बाद यह भट्टारक परंपरा के रूप में दूसरा आक्रमण हुआ है। तथापि जिनवाणी का यह उदघोष है कि दि. जैन साधुचर्या को दोष लगाने वाले दस नहीं सौ भट्टारक भी हो जायें और उनका छलपूर्ण समर्थन करने वाले एक नहीं सौ नीरज जी भी प्रचार करें तो भी अभी अठारह हजार वर्ष से अधिक के लम्बे काल तक इस भारत भूमि पर आगमानुकूल निर्दोष चर्या का पालन करने वाले मुनि, आर्यिका और उनके उपासक श्रावक एवं श्राविका का अस्तित्त्व बना रहेगा।

यह खेद की बात है कि माननीय नीरज जी निर्विवाद महान आचार्य श्री को भ्रष्ट मुनियों के द्वारा स्थापित भट्टारक सम्प्रदाय का समर्थक बताकर उनके उज्जवल व्यक्तित्व को लांच्छित करने का दुष्प्रयास कर रहे हैं और उनका भारी अवर्णवाद कर रहे हैं। आचार्य शांतिसागर जी महाराज किसी भी परिस्थिति में आगम विरूद्ध भट्टारक परंपरा का स्वप्न में भी समर्थन नहीं कर सकते थे और न कभी उन्होंने ऐसा किया है। इसके विपरीत भट्टारकों के आरंभ परिग्रह युक्त रूप का उन्होंने अन्यत्र स्पष्ट विरोध किया है।

प्रस्तावना के रूप में लिखे गए आगे के पृष्ठ में मेरे और बैनाड़ा जी दोनों पर आक्षेप किए गए हैं, जिन्हें हम आशीर्वाद के रूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में लेते हैं। श्री नीरज जी संभवत: भूल रहे हैं कि मिथ्यात्व पुराना होता है और सम्यक्त्व सदा ही नया उदित होता है। अत: प्रत्येक पुरानी परंपरा अच्छी ही होती है उनकी यह धारणा सही नहीं है।

आज मैं यह बात प्रकट किए बिना नहीं रह पा रहा हूँ कि आज के भट्टारकों में स्वाध्यायशील, आगमज्ञ मनीषी विद्वान भट्टारक चारूकीर्ति जी से मेरी गत वर्ष हुई चर्चा के प्रसंग में मैंने पाया कि वे भट्टारकों के आगमानुकूल स्वरूप निर्धारण के बारे में गंभीरता से चिंतन करते हैं और प्रमुख धर्माचार्यों के बीच में बैठकर इस पर चर्चा कर कोई आगम सम्मत स्वीकारणीय निर्णय पर पहुँचना चाहते हैं। मैं नम्रता किंतु दृढ़तापूर्वक यह कहना चाहता हूँ कि माननीय नीरज जी एवं महासभा साधु संस्था में परिस्थितियों वश आए दोषों के रूप में जन्मी भट्टारक परंपरा का अंधसमर्थन करके भट्टारक महोदयों के सच्चे हित चिंतक नहीं अपितु अहित चिंतक बन रहे हैं। किसी के द्वारा अपनी सुविधानुसार चलाई गई परंपरा में यदि आगम वर्णित आचार संहिता से विपरीतता है तो उसमें आगम सम्मत सुधार करना ही हितकारी है। आगम सर्वोपरि है।

श्री नीरज जी छल पूर्ण भाषा के द्वारा मिथ्या प्ररूपणा करने में कितने निष्णात एवं निडर हो गए हैं यह आपका शीर्षक 'आर्यिका पूज्य नहीं है,' अच्छी तरह बता रहा है। श्री बैनाड़ा जी ने आर्यिकाओं की मुनिराज के सदृश अष्ट द्रव्य से पूजा को उचित नहीं बताया है किंतु उनकी पदानुकूल विनय वंदना रूप पूजा तो श्रावक का कर्तव्य है ही। मैं तो जोर देकर यह कहना चाहता हूँ कि श्री बैनाड़ा जी एवं अन्य आर्यिका माताजी की अष्ट द्रव्य से पूजा करना विधेय नहीं मानने वाले लोग,आप सब पूजा करने वाले लोगों से आर्यिका माताजी की अधिक विनय एवं भक्ति करते हैं। आर्यिका माताजी की सर्वाधिक संख्या वाले इस संघ की माताजी के द्वारा की जा रही धर्म प्रभावना और उनके प्रति श्रावकों की भक्ति उल्लेखनीय है। यदि मात्र अष्ट द्रव्य से पूजा नहीं करने से ही आर्यिका माताजी चतुर्विधि संघ सेअलग हो जाती हैं और संघ त्रिविध रह जाता है तो श्रावक श्राविकाओं की भी पूजा नहीं किए जाने से, जो आपको भी करना इष्ट नहीं है, आपकी मान्यतानुसार द्विविध संघ ही रह जाना चाहिए। अविनय एवं अति विनय (विनयातिरेक) दोनों ही अज्ञान की उपज है। हमें जिनवाणी ने विभिन्न पदों पर स्थित संयमियों के विवेक पूर्वक यथायोग्य विनय सत्कार का उपदेश दिया है।

पक्षव्यामोह और स्वार्थ साधना की मजबूरी में लिखी इस पुस्तक में यद्यपि आगम और सतर्क का कोई आधार नहीं पाया जाता है और इस कारण इसका विस्तृत उत्तर लिखने के लिए मैं अधिक उत्साहित नहीं हूँ। तथापि यह विचार आता है कि धर्म की हानि के प्रसंग में धर्म श्रद्धालु बंधुओं के समक्ष सही वस्तुस्थिति रखी ही जानी चाहिए। पूर्व में कतिपय पाठकों का यह मत सामने आया था कि इस पत्रिका में ऐसे पारस्परिक विवादों को स्थान नहीं दिया जाना चाहिए। अस्तु: पुस्तक का बिंदुवार उत्तर देने के लिए मैं सुधी पाठकों की आदेशात्मक सम्मति चाहता हूँ। मेरा व्यक्तिगत मत यह है कि मतभेद के बिंदुओं पर हमें आगम आधारित वीतराग चर्चा करने से परहेज नहीं करना चाहिए। पर चर्चाएँ तभी फलप्रद होंगीं जब हम अपने मानस को आग्रह मुक्त कर आगम की बात स्वीकार करने योग्य बनाएँ। पाठकों की राय जानने के पश्चात् ही में उत्तर लिखूँगा।

मैं माननीय नीरज जी से किए गए मेरे पूर्व निवेदन को दोहराता हूँ कि वे महासभा की टीम के साथ प.पू. आचार्य वर्द्धमान सागर जी महाराज के चरण सान्निध्य में बैठकर चर्चा करें और हम सब मिलकर उनसे इस विषय पर चरणानुयोग आगम के अनुकूल दिशा निर्देश प्राप्त करें। क्या हम ऐसा कर सकते हैं?

मदनगढ़ - किशनगढ़
(राजस्थान)

आचार्य श्री विद्यासागर जी के सुभाषित

❖ जो शाश्वत है उसी का अनुभव किया जा सकता है। जो नश्वर है पकड़ते-पकड़ते ही चला जाने वाला है उसका अनुभव नहीं किया जा सकता। कहने का मतलब है द्रव्य दृष्टि रखकर निर्विकल्प होने की साधना करो, पर्यायों में आसक्त (उलझकर) होकर संकल्प विकल्प का जाल मत बनाओ।

❖ जो विश्व को जानने का प्रयास करेगा वह सर्वज्ञ बन नहीं सकता किन्तु जो स्वयं को जानने का प्रयास करेगा वह स्वयं का तो जान ही लेगा साथ ही सर्वज्ञ भी बन जायेगा।

❖ सर्वज्ञत्व आत्मा का स्वभाव नहीं है यह उनके उज्जवल ज्ञान की परिणति मात्र है। अत: व्यवहार नय की अपेक्षा से कहा जाता है कि भगवान् सबको जानते हैं किन्तु निश्चय नयसे ज्ञेय-ज्ञायक संबंध तो अपना, अपने को, अपने साथ, अपने लिये, अपने से, अपने में जानने देखने से सिद्ध होता है। ऐसा समयसार का व्याख्यान है।

'सागर बूँद समाय'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेरा कनाडा प्रवास

पं. राकेश जैन

पर्वाधिराज पर्युषण पर्व पर धर्म प्रभावना हेतु इस बार श्री दि.जैन श्रमण संस्कृति संस्थान सांगानेर की ओर से विदेश कनाडा जाने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ। जैन धर्म को जानने एवं समझने वाले तथा पर्युषण पर्व पर कुछ पुण्यार्जन करने के इच्छुक जैन लोग विदेशों में भी हैं, जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई। जैसा कि मैंने कनाडा के विषय में गुरु मुख से और अन्य बड़े उम्र के लोगों से सुना था, उसको वैसा ही पाया। जैसे ही मेरा हवाई जहाज कनाडा के सुन्दर शहर टोरन्टो में उतरा उसके ठीक 10 मिनट पूर्व ही धरती का जो दृश्य मैंने ऊपर से देखा तो मन आह्लादित हो गया, सुन्दर सी हरियाली के बीच पंक्ति बद्ध मकानों एवं रोड पर चलने वाली अनुशासित गाड़ियाँ, मध्य में हरे पानी की बड़ी-बड़ी झीलें तथा आसमान को मानो छूने के लिए आतुर कुछ ऊँची अट्टालिकाएँ मन को प्रभावित कर गयीं। 25 दिन के इस छोटे से प्रवास में जो अविस्मरणीय एवं प्रभावक कुछ संस्मरण हैं उनको मैं आपके सामने प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

वहाँ का मंदिर जैन मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है, उसमें दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायों की प्रतिमाएँ अलग-अलग वेदियों पर विराजमान हैं। जैन नाम से एकता के सूत्र में बंधे उस समन्वयक समाज के इस सौहार्द पूर्ण प्रयास को देखकर हृदय गदगद हो गया।

वहाँ श्रावकों की एक बात मुझे बहुत अच्छी लगी कि मंदिर का पूरा काम यहाँ तक कि झाडू लगाने से लेकर बर्तन साफ करने तक का काम श्रावक स्वयं करते हैं।

शाम को प्रवचन का समय 7:30 होता था। 7:25 तक कोई नहीं दिखता, परंतु जैसे ही 7:30 होते, चारों ओर से लगभग 80-100 किमी. की दूरी से निर्धारित समय पर सभी साधर्मी बंधु आ जाते थे। वहाँ यद्यपि श्रोताओं की संख्या ज्यादा नहीं होती थी, परंतु जितने भी आते थे, बड़ी ध्यान पूर्वक बात को सुनते और समझते थे तथा बाद में प्रश्नोत्तर भी करते थे और थोड़ा बहुत जीवन में उतारने का प्रयास भी करते थे।

मुझे आश्चर्य इस बात का हुआ कि मुझसे पहले वहाँ कई बड़े-बड़े विद्वानों के आध्यात्मिक प्रवचन हो चुके थे। परंतु उन श्रोताओं को प्रारंभिक पाँच इन्द्रिय, चार कषाय, पाँच पाप और चार गतियों का भी ज्ञान नहीं था। मुझे यह समझ में नहीं आता है कि पाप, कषायें एवं इंद्रिय निग्रह का ज्ञान कराये बिना आत्मा का चिन्तन और चर्चा भला कैसे हो जाती होगी, क्योंकि जैसा पण्डित दौलतराम जी ने कहा है कि - 'बिन जाने तें दोष गुणन को कैसे तजिये गहिये।' परिणामत: उन लोगों के मन में स्वाध्याय की रूचि जाग्रत की, जिसका फल ये हुआ कि पर्युषण पर्व के बाद कई लोगों ने विशेष कक्षा लगाकर जैन धर्म शिक्षा भाग - 1 में बड़े ही उत्साह से भाग लिया और पंक्तिश: परिभाषाओं को अच्छी तरह याद भी किया। कार्ड पर चौबीस तीर्थंकरों के नाम और चिन्ह लिखकर ऑफिस ले जाते थे और जैसे ही समय मिलता उसे बार बार देखते और याद करते थे। वहाँ पर लोग ज्यादातर सर्विस करते हैं, बिजनेसमेन बहुत कम हैं। दिन के 10-15 घण्टे तक इनका ऑफिस वर्क होता है। जिसको ये बड़ी ईमानदारी एवं कर्त्तव्य निष्ठा से करते हैं। तथा सप्ताह में दो दिन शनिवार और रविवार का अवकाश होता है, जिस दिन लोग बड़ी संख्या में मंदिर आकर पूजन-पाठ और स्वाध्याय करते हैं।

वहाँ पर लोगों ने सम्यक्‌प्रकार से पूजा विधि को एवं पूजा के अर्थ को जानने के प्रति भी अत्यंत रूचि दिखाई। उनको जब पूजा को बोलने की एवं करने की विधि तथा अर्थ समझाया तो उन्हें पूजा के प्रति और अच्छी रूचि जगी।

भारतीय संस्कार होने से वे लोग संगीत प्रिय हैं। अत: प्रतिदिन पूजन एवं प्रवचन के बाद एक धार्मिक या आध्यात्मिक भजन हारमोनियम के साथ सुनना ज्यादा पसंद करते हैं और फिर उसे आँखें बंद करके दोहराते भी हैं।

जाने से पहले कई तरह के संदेह मन में थे कि पता नहीं, खान-पान वहाँ लोगों का कैसा होगा और मेरे नियम पल पायेंगे या नहीं। परंतु मुझे यह बताते हुए बड़ी खुशी हो रही है कि जितने लोग मेरे सम्पर्क में आये उनमें से कोई भी माँस-अण्डा या मछली नहीं खाते थे और शराब को भी स्पर्श तक नहीं करते थे। पाश्चात्य देशों में रहकर भी शाकाहार के प्रति इतनी जागृति अत्यंत सराहनीय है।

वहाँ की सरकार ने मंदिरों और घरों को बहुत अच्छी सुरक्षा प्रदान कर रखी है। यदि थोड़ी सी भी आग लग जाए या धुआँ निकलने लगे तो तुरंत ऊपर उसका सायरन बजने लग जाता है, जिससे तत्संबंधी सुरक्षादल तत्काल वहाँ बचाव कर सके। सुरक्षा कर्मियों को अनिष्ट की शंका न हो। यदि कोई अपरिचित व्यक्ति मंदिर को आकर खोलने के बाद उसके कोड वर्ड को नहीं दबाये तो भी मंदिर में जोर जोर से सायरन बजने लग जाता है। इससे चोरी आदि का डर नहीं रहता है।

वहाँ सब्जियों की दुकानों पर और किराने की दुकानों पर भी बहुत सफाई और शुद्धता का ध्यान रखा जाता है। यदि किसी फल या सब्जी में कीड़ा लगा हुआ मिल जाए या किसी दुकानदार पर चूहा घूमता दिख जाए तो उस दुकान पर बड़ा भारी जुर्माना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लग सकता है।

रोड पर चलने वाली गाड़ियों का अपना आत्मानुशासन देखकर तो मैं दंग ही रह गया। वहाँ किसी भी चौराहे पर ट्राफिक पुलिस या अन्य कोई पुलिस दिखाई नहीं देती है। वाहन चालक स्वयं अपनी गाड़ी को ट्राफिक नियमों का पालन करते हुए ही चलाते हैं। 25 दिन में गाड़ी का हार्न सुनने के लिए तो मेरे कान मानों तरस ही गये। किसी भी तरह का ध्वनि प्रदूषण वहाँ नहीं होता है।

लोगों में वहाँ छल कपट ईर्ष्याभाव या वंचन की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत बहुत कम है। वहाँ लोग परस्पर भी बहुत ही मधुर व्यवहार रखते हैं तथा बिल्कुल अपरिचित व्यक्ति से भी प्रेम पूर्वक बात करते हैं।

जब मैं भारत से टोरन्टो जा रहा था तब कुर्ता पायजामा पहने हुए मैंने प्लेन में जब अपना टिफिन निकाला और भोजन से पूर्व पंचपरमेष्ठी का स्मरणात्मक कायोत्सर्ग किया तो पास में ही बैठे किसी ब्रिटिश ने आश्चर्य चकित हो गौर से देखते हुए पूछा- आर यू इंडियन ? तब मैंने कहा यस आई एम इंडियन्स जैन। प्रभावित होकर भोजन के बाद में फिर उसने कई बातें भगवान महावीर से संबंधित पूछी।

संस्थान से छात्रों की गतिविधियों की एक डी.वी.डी. बनवाकर वहाँ ले गया था। एक दिन जब सबको एक बड़ी स्क्रीन पर छात्रावास के कार्यक्रमों को दिखाया तो लोग दांतों तले उंगली दबाते रह गये। उन्हें आश्चर्य हुआ कि आज भी इतनी सुंदर व्यवस्थाओं को देने वाला कोई छात्रावास सांगानेर में है। जब मैं वहाँ पहुँचा तो लोगों ने कहा कि इस बार तो बहुत छोटे विद्वान आये हैं। तब मैंने उनसे कहा कि मैं तो अपने संस्थान के वरिष्ठ व्याख्याताओं में से एक हूँ। मेरे से कई छोटे-छोटे छात्र विद्वान सम्पूर्ण भारत वर्ष में धर्म की ध्वजा फहरा रहे हैं। आज हमारा लक्ष्य किसी जैनतर को जैन बनाना नहीं है अपितु जैनों को ही याद दिलाना है कि आप और हम जैन हैं। वहाँ पर कई लोगों ने अपनी भावना भी जताई है कि हम आपके वहाँ दो या तीन महीने के लिए आकर स्वाध्याय एवं ध्यान करना सीखेंगे।

भारत वापस आते समय दो बड़े सूटकेस तो वहीं टोरन्टो में जमा कर लिए गये। एक मात्र हेण्डबेग को साथ में रखने की अनुमति उन्होंने दी। जमा करते हुए कहा कि सामान आपको नई दिल्ली एयरपोर्ट पर मिल जाएगा। मैं निश्चिन्त होकर जो लोग छोड़ने आये थे उनसे विदाई लेकर यात्रा के लिए हवाईजहाज में बैठ गया मेरी फ्लाइट टोरन्टो से वियाना और वियाना से नई दिल्ली के लिए थी। नई दिल्ली में इमिग्रेशन के बाद जब मैं अपने दो सूटकेस लेने पहुँचा तो मालूम पड़ा कि सूटकेस तो आये ही नहीं। मन में चिन्ता सी होने लगी यात्रा का पूरा आनंद मायूसी में बदल गया। पूछताछ से जानकारी प्राप्तकर मैंने वहाँ रिपोर्ट लिखवाई उनको सांगानेर का पूरा पता लिखकर दिया। उदास ही छात्रावास लौटा दूसरे दिन दिल्ली एयरपोर्ट से फोन आया कि आपका सामान वियाना से दूसरी फ्लाईट में दिल्ली आ गया है और हम सांगानेर आपको देने दिल्ली से आ रहे हैं। तब जाकर मन को शांति हुई। और वर्तमान में अभी भी ईमानदारी जीवित है, जानकर मन प्रसन्नचित हो गया।

अंत में मैं यही कहना चाहता हूँ कि वहाँ का प्रत्येक नागरिक देश को उन्नत बनाने के लिए एवं अपने नगर और परिसर को स्वच्छ एवं सुंदर बनाये रखने के लिए स्वयं दृढ़ संकल्प है। इसके विपरीत जब मैं भारत उतरकर दिल्ली धोलाकुंआँ से जयपुर के लिए रात दो ढाई बजे सरकारी रोडवेज में बैठा तो देखा कि मेरी आगे वाली सीट पर बैठा हुआ एक व्यक्ति धूम्रपान कर रहा था। परिचालक ने उसे एक बार मना करके अपनी औपचारिकता पूरी कर ली। परंतु मेरे पास में बैठे हुए किसी एक शिक्षित व्यक्ति ने उसे बस में लिखे हुए साइन बोर्ड को दिखाते हुए धूम्रपान नहीं करने के लिए समझाया तो वह व्यक्ति उससे लड़ पड़ा और कहने लगा मैं देहरादून से सिगरेट पीता आ रहा हूँ किसी ने मना नहीं किया तुम कौन होते हो मुझे टोकने वाले? तुम्हें तकलीफ है तो पीछे जाकर बैठ जाओ यात्रा की थकान से गहरी नींद में सोया था तब तक मेरी नींद भी खुल चुकी थी और मुझे एहसास होने लगा था कि मैं वापस भारत आ गया हूँ। दोनों लोगों को प्रेम से समझाया और झगड़ा शांत कराया।

इसका मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि 25 दिन विदेश की हवा लगने के बाद मेरा मन एवं चिंतन प्रणाली विदेशी संस्कृति परक हो गयी हो और अपने देश भारत के प्रति हीनता और लघुता प्रदर्शित सी हो रही हो। आज मैं यह गौरव के साथ कहता हूँ कि जितनी पवित्रता और मर्यादा हमारी अपनी संस्कृति में है वह और कहीं नहीं। सुबह उठकर जो मंदिरों के घण्टों की ध्वनियाँ या जुबान पर भगवान का नाम होता है वैसा एक अदृश्य भगवान के प्रति श्रद्धा और समर्पण कहीं नहीं है। पारिवारिक संबंधों में जो संवेदनायें हैं एवं विश्वास हमारे देश में है वैसा और कहीं नहीं। परंतु फिर भी 'गुण ग्रहण का भाव रहे नित' इस दृष्टि से यदि ऐसा देश एवं राष्ट्र के प्रति हम सबकी श्रद्धा और समर्पण रहे तो मैं समझता हूँ हम 2020 से पहले ही विकसित देशों की पंक्ति में आ जायेंगे।

संस्कृत व्याख्याता
श्री दि.जैन श्रमण संस्कृति संस्थान
सांगानेर (जयपुर) राजस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गर्भावस्था में आहार

डॉ. वन्दना जैन

जिसके लिये कोई उपमा न दी जा सके उसका नाम है माँ। जिसकी कोई सीमा नहीं उसका नाम है माँ। जिसके प्रेम को कभी पतझड़ स्पर्श न करे उसका नाम है माँ, यही नहीं प्रभु को पाने की पहली सीढ़ी है माँ। पर वह इस ममता का अहसास तभी कर पाती है जब वह गर्भावस्था में थोड़ी सी सावधानी रखे। इस समय की गई जरा सी असावधानी उसे इस अहसास से वंचित भी कर सकती है। गर्भावस्था में रोगों से तथा प्रसव समय की पीड़ाओं से स्त्री प्राकृतिक जीवन व्यतीत करके छुटकारा पा सकती है। इसके लिए कुछ बिन्दुओं पर विचार करना होगा। गर्भावस्था में आहार कैसा हो, गर्भिणी के लिए उचित अनुचित व्यवहार क्या हो। गर्भिणी चमत्कारी व्यायाम व प्राकृतिक उपचार क्या करें? तथा गर्भावस्था में शरीर संतुलन बनाये रखकर इस समय को और अधिक सुखमय बनाये रख सकते हैं। तथा गर्भपात से बचाव के उपाय भी कर सकते हैं।

गर्भावस्था में माँ के भोजन से ही बच्चे का पोषण होता है। अत: उसके भोजन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इस समय अधिक भोजन की आवश्यकता नहीं होती, वरन अधिक पौष्टिक भोजन की आवश्यकता होती है। अर्थात् भोजन की मात्रा न बढ़ाकर उसके गुणों को बढ़ाना चाहिये। इस समय यथेष्ठ मात्रा में रक्षकारी खाद्य ग्रहण करना चाहिये। जैसे कैल्शियम, फास्फोरस, लोहा और विटामिन ए,डी और ई का रहना आवश्यक है। जिससे भ्रूण का पोषण ठीक ढ़ंग से हो सके और समय पर बच्चा बिना कष्ट के जन्म ले सके।

गर्भावस्था में जब भ्रूण के शरीर की हड्डियों का गठन होता है उस समय उसे अधिक मात्रा में कैल्शियम और फास्फोरस की आवश्यकता होती है। यदि ये न हो तो प्रकृति, माता के शरीर से उन्हें खींच लेने को वाध्य होती है। जिससे माता का स्वास्थ्य बिगड़ता जाता है और वह दुर्बल हो जाती है। उसे सिरदर्द, थकावट, अनिद्रा, उल्टियाँ एक्सलेमसिया आदि रोगों के लक्षण प्रकट होते हैं। यदि भ्रूण माँ के गर्भ से प्रचुर मात्रा में चूना ग्रहण न कर सके तो बच्चे को रिकेट्स रोग हो सकता है। और उसके दाँत खराब हो सकते हैं।

गर्भवती माता को दूध, चौलाई का साग, आवंला, बिना मसाले का गुड़, तिल, सोयाबीन अधिक मात्रा में लेना चाहिये क्योंकि इसमें कैल्शियम और फास्फोरस पर्याप्त मात्रा में होता है। किन्तु कैल्शियम को पचाने के लिए विटामिन डी.की आवश्यकता होती है। इसलिए प्रतिदिन स्नान से पहले कुछ देर धूप में बैठना चाहिये। धूप में बैठने से विटामिन डी. प्राप्त होता है। यदि धूप न ली जायेगी तो मछली का तेल (कॉड लीवर ऑयल) खाना पड़ेगा। अत: धूप लेना बहुत ही आवश्यक है।

धूप स्नान के समय मालिश करना अच्छा रहता है।

गर्भवती के भोजन में लोह तत्व की मात्रा भी रहनी चाहिये। लोहा रक्त का एक प्रधान घटक है। जन्म लेने के बाद शिशु को माता के दूध पर निर्भर रहना पड़ता है, इसलिए बच्चे के शरीर में ऐसी व्यवस्था है कि शिशु माता के शरीर से यथेष्ठ मात्रा में लोहा खींचकर अपने यकृत में भविष्य के खर्च के लिए जमा रखे। इसी कारण बहुधा देखने में आता है कि दूध पिलाने वाली माता रक्त शून्य हो जाती है। इसलिए माता को चने का साग, चौलाइ, मैथी, पालक, पुदीना, किशमिश, खुमानी, सोयाबीन, तिल, गुड आदि लोह प्रधान वस्तुओं का अपने भोजन में उचित स्थान देना चाहिए। प्रतिदिन इनमें से किसी एक पदार्थ को कूटकर एक कप रस निकालकर गुड के साथ लेना बहुत लाभकारी होता है। गर्भवती को विटामिन ई. की भी विशेष आवश्यकता होती है। जिसकी कमी से गर्भपात तक हो सकता है। विटामिन ई. अंकुरित मूंग और गेहूँ, पालक, सलाद के पत्ते, गेहूँ का चोकर हाथ कुटे चावल और गुड़ में होता है।

पहले छह महिनों तक गर्भवती को शर्करा प्रधान खाद्य प्रचुर मात्रा में लेना चाहिये। इस समय बच्चे के शरीर को काफी शर्करा की आवश्यकता होती है। इस समय यदि माता के यकृत में संचित शर्करा कम हो जाय तो यकृत की कार्य क्षमता का ह्रास हो जाता है। और शरीर में विभिन्न दूषित पदार्थ जमा होने लगते हैं, जिससे गर्भिणी का रक्त विषाक्त हो जाता है। इसलिए पहले छह महिनों में गन्ने का रस खजूर गुड़ किशमिश खुमानी व मीठे फल आवश्यकतानुसार लेने चाहिये। जब गर्भ सात माह का हो जाय तो शुद्ध घी का प्रयोग अधिक करना चाहिये। इस समय घी कुछ अधिक लेने से बच्चे का जन्म बिना कष्ट के होता है।

अंतिम तीन महिनों में चावल और चपाती कम करके फल और दूध पर अधिक जोर देना चाहिये। क्योंकि इन दिनों में गर्भिणी को प्रोटीन की अधिक आवश्यकता रहती है। इससे माता के स्तनों में अधिक दूध उत्पन्न होता है और प्रसव के समय अधिक रक्तस्राव नहीं होता। प्रोटीन के लिएदूध,दही और पनीर पर अधिक निर्भर रहना चाहिए।

गर्भ के पहले महिनों में वसा तथा तली हुई चीजों से परहेज करना चाहिये तथा गर्भ के अंतिम दिनों में वसा (घी आदि) का प्रयोग करना चाहिये इससे बच्चा आसानी से होगा। गर्भावस्था में अक्सर कब्ज हो जाती है उसके लिए कच्ची सब्जियों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का प्रयोग, सलाद, चोकर समेत आटे की रोटी और फल खूब लेने चाहिये। ये खाद्य इसलिएभीआवश्यक हैं कि गर्भावस्था में रक्त का अम्लत्व बहुत बढ़ जाता है और यह आहारअम्लत्व को रोकता है। गर्भिणी का भोजन विशेष रूप से हल्का व सुपाच्य होना चाहिये।

गर्भावस्था में शरीर का वचन आठ दस किलो तक बढ़ जाता है। यदि वजनअधिक बढ़ने लगे तो चर्वी और शर्करा जाति का आहार रोक देना चाहिये और नमक भी कम कर देना चाहिये। गर्भिणी को हर दिन काफी मात्रा में पानी पीना चाहिये। इससे पेसाव साफ होती है और गर्भिणी तथा उसके शरीर में स्थित शिशु के शरीर का समस्त विषाक्त पदार्थ सरलता से बाहर हो जाता है। अन्यथा यह विष शरीर में जमा होकर विभिन्न रोगों की सृष्टि कर सकता है।

प्रतिदिन दोपहर में भोजन के एक घंटा बाद कच्चे नारियल का पानी पीने से भोजन आसानी से पच जाता है। गर्भिणी के शरीर में आयोडीन की कमी से विकलांगता या मृत सन्तान पैदा होती है। इसके लिए उसे मक्खन, गाजर, हरा सेब और विभिन्न हरी सब्जियों का सेवन करना चाहिये।

कार्ड पैलेस, (वर्णी कॉलोनी) सागर

अप्रत्यक्ष रूप से निर्माल्य वस्तु का प्रयोग

डॉ. सुधीर जैन

वीतराग देव शास्त्र गुरु की अष्टद्रव्य से पूजा करने में अतिशय पुण्य का बंध होना बताया गया है और आजकल जब हम पूजन सामग्री खरीदने बाजार में जाते हैं तब हमें कभी-कभी ऐसा लगता है कि यह वस्तु पूर्व में उपयोग में लाई जा चुकी है, जैसे बादाम में चमक न होना, लवंग का फूल टूटा होना, नारियल पुराना हो जाना आदि-आदि। चूँकि पूजन के पूर्व इन वस्तुओं को प्रासुक जल से अनेक बार धो लिया जाता है अत: इनकी चमक आदि चली जाती है। ये अर्पित या चढ़ी हुई वस्तुयें ही निर्माल्य वस्तुयें कहलाती हैं। इसका दूसरा पक्ष यह है कि आजकल बाजार में पूजा की बादाम, पूजा की सुपारी (अर्थात छोटे आकार की) बिकने लगी है, एक बार चढ़ने के बाद जब वह पुन: बाजार में आयेगी, अर्चक या माली उसकी दूकान लगायेंगे तो निश्चत रूप से वह वस्तु पूजा के लिये ही बिकेगी, किसी खाद्य पदार्थ के रूप में नहीं।

धार्मिक पूजाविधान में प्राय: यह मान्यता रही है कि पूजा के लिए चढ़ाई गई वस्तु को दुबारा न चढ़ाया जाये, क्योंकि चढ़ाई गई वस्तु उच्छिष्ट मान ली जाती है। लोभवश नैतिक गिरावट के कारण ये निर्माल्य वस्तुएँ पुन: विक्रय हेतु बाजार में आ जाती हैं और हम इन निर्माल्य वस्तुओं (सामग्री) का उपयोग अप्रत्यक्ष रूप से पूजन आदि क्रियाओं में करने लगते हैं एवं यह क्रम चलता रहता है। निर्माल्य सामग्री को अन्य जातियों में प्रसाद के रूप में तो ग्रहण किया जाता है, उसे प्रसाद के रूप में वितरित भी किया जाता है, परंतु उसे दुबारा पूजा के लिए चढ़ाना धार्मिक मान्यताओं के विपरीत है। निर्माल्य वस्तु के पुन: प्रयोग से पूजा की पवित्रता एवं शुद्धता बाधित होती है और धार्मिक आस्थाएँ, आहत होती हैं।

इसे दूर करने के लिए कुछ प्रमुख सुझावों पर गंभीरता पूर्वक विचार किया जा सकता है-

1. चढ़ाई जाने वाली वस्तु का विक्रय कुछ निश्चित स्थानों से ही किया जाये, जैसे जैन समाज द्वारा निर्धारित समिति से। मंदिर समिति इन वस्तुओं को सीधे कारखाने से वर्ष भर के लिये (अनुमानित मात्रा में) एक साथ विक्रय हेतु मँगा सकती है एवं इनका क्रय लोग निश्चित स्थान जैसे समिति या जैन मंदिर से ही करें।

2. चढ़ाई जानेवाली वस्तु वर्ष भर के लिए एक साथ ही खरीद ली जाये। जिसके पास वर्ष भर के लिए साधन उपलब्ध न हों, वे अनिवार्यत: जैन मंदिर या समिति के माध्यम से ही क्रय करें।

3. जैन समिति द्वारा यह निर्धारित किया जाये कि अमुक वस्तु (बादाम, नारियल, खारक, सुपारी, इलायची, लवंगादि) ही किसी विशेष वर्ष भर चढ़ाई जाये, जिससे उस वस्तु को लोग वर्ष भर के लिए खरीद सकें। उससे उसकी शुद्धता बाधित नहीं होगी अर्थात् चढ़ाई गई वस्तु को दुबारा चढ़ाने का अवसर नहीं आयेगा।

4. दूसरे वर्ष के लिए चढ़ाई जाने वाली वस्तु समिति के निर्णय से बदल दी जाये और उसी वस्तु को दूसरे वर्ष भर तक चढ़ाया जाये। यह वस्तु चढ़ाये जाने की प्रक्रिया वार्षिक रूप से निरंतर बदलती रहे। उदाहरण स्वरूप प्रथम वर्ष में बादाम, द्वितीय वर्ष में सुपारी और तृतीय वर्ष में छोहारा(खारक)आदि। चतुर्थ वर्ष में पुन: बादाम का प्रयोग करते हुए यह त्रिवार्षिक क्रम जारी रह सकता है। इसके पीछे मंशा यह है कि प्राय: तीन वर्ष में पूर्व में चढ़ाई गई वस्तु खराब हो जायेगी और हम निर्माल्य वस्तु का पुन: प्रयोग हम रोक सकेंगे।

धार्मिक विधिविधान का आशय यदि आत्मिक शुद्धता है, तो वस्तु की शुद्धता भी उसका अनिवार्य अंग है। उसकी अशुद्धता से हम तभी बच सकते हैं, जब हम कुछ कठोर निर्णय लें और उसका कड़ाई से पालन करें। आज कल की नैतिक गिरावट के साथ-साथ यह बताना जरूरी हो गया है कि कम से कम निर्माल्य वस्तु का पुन: प्रयोग न हो और यह तभी संभव है जब हम शुद्ध हृदय से , नियमों का पालन करेंगे और आत्मिक शुद्धता रखेंगे। इस लेख के लिखने में हमारा यह अभिप्राय कतई नहीं कि आप किसी भय से शुद्ध प्रासुक (अचित्त या सूखी)द्रव्य चढ़ाना छोड़ दें, लेकिन और भी विवेक के साथ अगर पूजा की जायेगी तो हम सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के भक्त बनकर अतिशय पुण्य का संपादन करते हुए संसार में सुखसम्पदा को पाते हुये मोक्ष संपदा को प्राप्त कर सकेंगे।

प्राध्यापक - भौतिकी
एफ १०८/३४, शिवाजीनगर
भोपाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिज्ञासा समाधान

पं.रतनलाल बैनाड़ा

प्रश्नकर्त्ता - सुरेश चन्द्र वरौलिया, आगरा

जिज्ञासा - जैन आगम में सर्वप्रथम कौन सा शास्त्र लिपिबद्ध हुआ है?

समाधान - वर्तमान उपलब्ध समस्त जैन शास्त्रों में प्राचीनतम ग्रंथराज दो ही माने जाते हैं

1. श्रीकषाय पाहुड़
2. श्री षट्खंडागम

इन दोनों महाशास्त्रों में से सर्वप्रथम लिपिबद्ध शास्त्र के संबंध में निम्न प्रमाणों के आधार से विचार करते हैं :-

1. आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज (पू.आ.विद्यासागर जी महाराज के दीक्षा गुरु) द्वारा लिखित पुस्तक 'इतिहास के पन्ने' पृष्ठ 14 पर लिखा है, 'सन् 25 ई. के लगभग आ.गुणधर ने कषायपाहुड़ नामक आगम ग्रंथ का उद्धार, संकलन एवं लिपिबद्धीकरण किया। इसी समय ई. 40-75 में गिरिनगर की चन्द्रगुफा में आचार्य धरसेन निवास करते थे। लगभग 75 ई. में आ.पुष्पदंत एवं भूतवलि द्वारा षट्खंडागम सिद्धांत के रूप में महावीर द्वारा उपदेशित आगमों के इस महत्त्वपूर्ण अंश का भी उद्धार एवं संकलन हो गया।

2. डॉ. नेमिचन्द ज्योतिषाचार्य द्वारा लिखित 'तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परंपरा' पृष्ठ 30 के अनुसार तो 'छक्खंडागम' प्रवचनकर्ता धरसेनाचार्य से 'कषाय पाहुड़' के प्रणेता गुणधराचार्य का समय लगभग दो सौ वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। इस प्रकार आ.गुणधर का समय विक्रम पूर्व प्रथम शताब्दी सिद्ध हो जाता है।

3. पं. परमानंदशास्त्री द्वारा लिखित 'जैन धर्म का प्राचीन इतिहास' भाग-2, पृष्ठ 68 पर लिखा है 'इस प्रकार आ.गुणधर का समय ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी सिद्ध होता है।' श्री षट्खंडागम के काल के संबंध में आपने लिखा है आ.अर्हद्वली का सम्मेलन ई.पू. 66 में हुआ था। उसके बाद ही श्री षट्खंडागम की रचना हुई थी।'

4. डॉ. राजाराम जैन द्वारा लिखित 'शौर सैनी प्राकृतभाषा एवं उसके साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' पृष्ठ 31 पर लिखा है 'कषाय पाहुड़' शौरसैनी प्राकृत का आद्य महत्वपूर्ण ग्रंथ है .... यह कहा जा सकता है कि 'षट्खंडागम' की ग्रंथ रचना पद्धति 'कषाय पाहुड' की सूत्र गाथाओं पर आधारित रही है। श्रुतधराचार्यों की परंपरा में सर्वप्रथम आचार्य गुणधर का नाम आता है। पृष्ठ 33 पृष्ठ 37, पं.हीरालाल सिद्धांत शास्त्री, क्षु.जिनेन्द्रवर्णी तथा डॉ.देवेन्द्र शास्त्री आदि कुछ गवेषक विद्वानों की ऐसी धारणा है कि आचार्य गुणधर का काल ईसा पूर्व दूसरी सदी रहा होगा।

उपरोक्त के अलावा इतिहास के अन्य भी बहुत से प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आचार्य गुणधर का काल, आचार्य पुष्पदंत तथा भूतबलि से पूर्व का रहा है। अत: सर्वप्रथम लिपिबद्ध ग्रंथ 'कषायपाहुड़' मानना चाहिये।

यह भी जानने योग्य है कि इन महान श्रुतधराचार्यों द्वारा, ग्रंथ में अपना नाम या समय लिखने की परंपरा नहीं थी। अत: पूर्वापर प्रमाणों द्वारा ही इनके काल का निर्णय संभव हो पाता है। इतिहासकार अन्य प्राचीन लिपिबद्ध ग्रंथों में विमलसूरि का 'पउमचिरउ,' आचार्य शिवार्य की 'भगवती आराधना', आचार्य कुमारनंदि की 'कर्तिकेयानुपेक्खा' तथा आचार्य धरसेन के 'जोणिपाहुड' के साथ ही आचार्य कुन्दकुन्द के साहित्य को भी ईसा की प्रथम शताब्दी का मानते हैं।

प्रश्नकर्त्ता - सौ. सविता, नंदुरवार

जिज्ञासा - क्या ग्यारहवें गुणस्थान वर्ती साधु, गिरकर दूसरे गुणस्थान को प्राप्त हो सकते हैं?

समाधान - इस संबंध में आचार्यों के दो मत पाये जाते हैं- 1. श्री धवला पुस्तक ५, पृष्ठ 1, पर कहा है 'उवसमसेढीदो ओदिण्णणं सासण गमणाभावादो।'

अर्थ - उपशम श्रेणी से उतरने वाले जीवों का, सासादन में गमन करने का अभाव है।

भावार्थ - ग्याहरवें गुणस्थान से गिरकर साधु, सासादन गुणस्थान को प्राप्त नहीं होता। यह आ. भूतवली महाराज का मत है।

2. श्री जयधवल पु. 10 पृष्ठ 123 पर कहा है- कसायोवसमणादो परिवदिदस्स दंसण मोहणीय उवसंतद्धा अंतोमुहत्ती सेसा अत्थि तिस्से छावलियावसेसाएप्पहुडिजाव तवद्धा चरिय समयोति ताव सासणगुणेण परिमाणेदुं संभवो।

अर्थ - कषयोपशमना (उपशांत मोह) से गिरे हुये जीव के दर्शनमोहनीय के उपशमना का काल अंतर्मुहूर्त शेष बचता है। उसमें जब छह आवलि शेष रहें वहाँ से लेकर उपशामना काल के अंतिम समय तक सासादन गुण रूप से परिणमन करना संभव है।

भावार्थ - ग्यारहवें गुणस्थान से गिरकर साधु सासादन गुणस्थान को प्राप्त हो सकता है। यह कषायपाहुड़ के चूर्णसूत्रकार आचार्य यतिवृषभ का मत है।

विषय सूक्ष्म है अत: हमको दोनों ही मत मानने योग्य हैं।

प्रश्नकर्त्ता - कामताप्रसाद जी मुजफ्फरनगर

जिज्ञासा - जो केवली भगवान्, तीर्थंकर के समवशरण में विराजमान रहते हैं, वे तीर्थंकर भगवान को नमोस्तु करते हैं या नहीं? तेरहवें गुणस्थान में उनके कौन सा ध्यान होता है।

समाधान - वंद्य वंदकभाव प्रशस्तराग का सूचक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवली भगवान मोहनीयकर्म का नाश हो जाने से, अब राग नाममात्र के लिये भी शेष नहीं है। अत: वे न तो तीर्थंकर भगवान् को नमोस्तु ही करते हैं और न स्वयं को नमोस्तु करने वालों को आशीर्वाद ही देते हैं। आशीर्वाद देना भी राग परिणति का द्योतक कहा गया है।

तेरहवें गुणस्थान में कोई ध्यान नहीं होता । जब आयुकर्म अंतर्मुहूर्त मात्र शेष रह जाता है तब तेरहवें गुणस्थान के अंत में, चार अघातिया कर्मों की स्थिति को आयुकर्म के समान करने के लिये तृतीय शुक्लध्यान, सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाति होता है। शेष काल में ध्यान रहित अवस्था रहती है।

प्रश्नकर्ता - रवीन्द्र चौधरी, सागर

जिज्ञासा - देवों के शरीर में कांति उद्योत नाम कर्म से होती है या आदेय नाम कर्म से?

समाधान - देवों के शरीर में कांति वर्ण नाम कर्म के उदय से होती है। श्री धवला पु. 6 पृष्ठ 126 पर इस प्रकार कहा है -- 'देवेसुउज्जोवस्सुदयाभावे देवाणं देह दित्ती कुदो होदि? वण्णणाम कम्मोदयादो।

अर्थ - प्रश्न, देवों में उद्योत प्रकृति का उदय नहीं होने पर देवों के शरीर की दीप्ति कहाँ से होती है?

उत्तर - देवों के शरीर में दीप्ति, वर्ण नाम कर्म के उदय से होती है।

प्रश्नकर्त्ता - पदम कुमार जैन , ज्वेलर्स, बरहन, जिला-आगरा

जिज्ञासा - मेरे ताऊजी के लड़के की नातिनी डेढ़ घंटे जीवित रहकर मरण को प्राप्त हुई। इसका सूतक कितना मानना चाहिए?

समाधान - किशनसिंह रचित क्रियाकोष में चौपाई नं. 1315 -1316 में इस प्रकार कहा है -

बालक तीस दिवस लौं जान । 1315
एक दिवस इनकौ है शोग। 1316

अर्थ - 30 दिन तक का बालक मरे तो इनका शोक सूतक एक दिन का होता है। श्री जैनेन्द्र सिद्धांत कोश भाग - 4, पृष्ठ 443 पर भी एक महीने तक के बालक के मरण का सूतक एक दिन कहा है। अत: आपको एक दिन का सूतक मानना चाहिए।

प्रश्नकर्त्ता - सौ. ज्योतिललितशाह, मुंबई

जिज्ञासा - विग्रहगति में जीव के साथ तैजस शरीर भी रहता है , तो क्या उससमय अनाहारक होने के कारण तैजस वर्गणाओं का ग्रहण नहीं होता होगा, क्योंकि जीव अनाहारक रहता है।

समाधान - विग्रहगति में जीव के साथ तैजस एवं कार्मण शरीर रहते हैं और इसीलिए तैजस एवं कार्मण वर्गणाओं का ग्रहण प्रतिसमय होता ही रहता है। लेकिन तैजस कार्मण वर्गणाओं के ग्रहण से आहारकपना नहीं बनता। आहारक की परिभाषा यह है कि औदारिक, वैक्रियक एवं आहारक इन तीन शरीरों तथा छै पर्याप्तियों के योग्य वर्गणाओं का ग्रहण करना आहारक कहलाता है। विग्रहगति में इन तीनों शरीर पर्याप्तियों के योग्य वर्गणाओं का ग्रहण नहीं होता अत: तैजस व कार्मण वर्गणाओं का ग्रहण करते हुए जीव अनाहारक ही रहता है।

जिज्ञासा - जीर्ण, शीर्ण पुराने शास्त्रों या धार्मिक पुस्तकों का विसर्जन कैसे करना चाहिए?

समाधान - शास्त्रों में इस बात का उल्लेख तो पाया जाता है कि यदि कोई मूर्ति खण्डित हो जाये तो उसको नदी आदि की धारा में प्रवाहित कर देना चाहिए। परंतु जीर्ण-शीर्ण शास्त्र एवं धार्मिक पुस्तकों के बारे में कोई वर्णन मेरे पढ़ने में नहीं आया। समय-समय पर मुनिराजों एवं गणमान्य विद्वानों के प्रवचनों में यह विषय जरूर सुना गया जिसके अनुसार जीर्ण-शीर्ण शास्त्र एवं धार्मिक पुस्तकों को या तो नदी आदि के प्रवाह में विसर्जित कर देना चाहिए अथवा अग्नि में समर्पित कर देना चाहिए। आजकल मंदिरों में अथवा अपने घरों में पंचकल्याणक आदि कार्यक्रमों की निमंत्रण पत्रिकाएँ, जिनमें भगवान एवं मुनिराजों के चित्र छपे होते हैं तथा भिन्न-भिन्न श्लोक एवं मंत्र भी लिखे होते हैं, काफी मात्रा में आने लगी हैं, इन सबको भी एकत्रित करके एक-दो माह बाद अग्नि समर्पित करते रहना चाहिए। चूँकि ये पत्रिकाएँ लेमिनेटेड होती हैं और जल में इनका गलना संभव नहीं है अत: अग्नि विसर्जन ही श्रेष्ठ है। इसके अलावा हमारे घरों में विवाह आदि के निमंत्रण पत्रों में तीर्थंकरों का नाम अथवा मंगलम् भगवान् वीरो ..... छपा रहता है। अत: जब उनका समय निकल जाये तब इन भगवान के नामों को अथवा श्लोकों को उसमें से निकालकर शेष पत्रिका को फटा देना चाहिए। महावीर जयंती आदि के अवसर पर यदि समाचार पत्रों में भगवान् महावीर का जीवन चरित्र एवं यति चित्र छपा हो तो उसको भी अलग निकाल लेना चाहिए। जैन पत्र-पत्रिकाओं में भी जो धार्मिक प्रसंग छपे हों उन सबको भी निकालकर एक जगह एकत्रित कर लें और जल प्रवाह में या अग्नि में विसर्जित करना चाहिए।

अग्नि विसर्जन करने पर जो राख बने उसे भी उचित स्थान पर गाड़ देना चाहिए या गमले आदि में डाल देना चाहिए। यहाँ कोई प्रश्न कर सकता है, कि इनको अग्नि विसर्जित करने पर क्या हमको पाप नहीं लगेगा। इसका समाधान यह है कि इसके अलावा इन सबका और क्या उचित उपयोग किया जा सकता है। यदि पुरानी पुस्तक आदि को रखे रहेंगे तो उनमें जीवोत्पत्ति होने पर हिंसा होगी दीमक आदि लगेगी। कुछ तो उचित उपयोग करना ही पड़ेगा। परंतु यदि द्वेष वशात् इनको अग्नि में डाला जाए तब महान् पाप का प्रसंग आता है। परंतु हम ऐसा नहीं कर रहे हैं। हम तो केवल जीर्ण-शीर्ण या अनावश्यक पत्रिकाओं आदि का उचित उपयोग करने की बात कर रहे हैं।

**1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
हरीपर्वत, आगरा (उ.प्र.)**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रंथ-समीक्षा

तीर्थोदय काव्य का सौन्दर्य

श्रीपाल जैन 'दिवा'

तीर्थोदय काव्य के प्रणेता आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परम शिष्य जो वस्तुत: सिंह वृत्ति के धारक, तप से कर्म-मारक, अभय के धारक, स्वपर कल्याण की उत्कट भावना के धनी मुनि श्री १०८ आर्जवसागर जी महाराज हैं। जो मिथ्यात्वाचरण के नाश की प्रगाढ़ प्रेरणा प्रत्येक श्रमण, श्रोता को देना नहीं भूलते, जिससे सभी मानव-साधर्मी सम्यग्दृष्टि प्राप्त करें ऐसी उनकी मंगल कामना का फल ही तीर्थोदय काव्य है। साथ ही सोलहकारण भावना भाकर तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करें यह मंगलभावना भी निहित है।

वैराग्य रस के रसिक, प्रसाद गुण के धनी, छन्द-अलंकारों के ज्ञाता, दर्शन को काव्य में बाँधने के कौशल में प्रवीण, इन गुणों के तीर्थोदय काव्य में सर्वत्र दर्शन होते हैं। सम्पूर्ण काव्य ज्ञानोदय छन्द एवं दोहा छंद में सप्त शतक के रूप में निबद्ध है।

काव्य में आंतरिक तुक साम्य-सौन्दर्य के माधुर्य का आनन्द निराला होता है। जिनवाणी मंगल के पद्य में देखिये-

सदा भारती जगत तारती, जिनवाणी मंगलकारी।
मोक्ष मार्ग में जिन सेवक को, सदा रही संकट हारी॥

इन पंक्तियों में 'भारती' और 'तारती' शब्द आंतरिक तुक साम्य सौन्दर्य के प्रबल साक्षी हैं। कर्ण प्रियता के जनक हैं ये शब्द। 'त' 'त' की त्रय बार आवृत्ति में अन्त्यानुप्रास अलंकार हाथ जोड़े खड़ा है। दूसरी पंक्ति में भी अनुप्रास अलंकार छाया की तरह साथ है। उन्हें लाया नहीं गया है बुलाया नहीं गया है अनिमंत्रित आये हैं। जब कविता झरती है तो रस छंद अलंकारों की वर्षा प्रकृत रूप से होती है। यह स्थिति सम्पूर्ण काव्य में सर्वत्र विद्यमान है।

प्राय: दर्शन की भाषा सारल्य से दूर होती है परन्तु तीर्थोदय काव्य की भाषा प्रसाद गुण के कारण सरल सुबोध एवं हृदयस्पर्शी है। यहाँ भाषा को मार्दव और आर्जव गुण आशीष रूप में उपलब्ध हुए हैं। साहित्य मर्मी इसका अनुभव करेंगे। जब मुनि-कवि के हृदय में स्वपर कल्याण की गंगौत्री जन्म लेती है तो सुखकारी शुद्ध निर्मल ज्ञान गंगा का प्रवाह बहता है वही प्रवाह तीर्थोदय काव्य में है।

सम्यक्त्व की उपलब्धि में तीन मूढ़ताएँ घोर बाधक हैं। लोक मूढ़ता, देव मूढ़ता, गुरु-मूढ़ता प्रसिद्ध हैं।

तीर्थोदय काव्य में पूर्व वर्णित लोक मूढ़ताओं के अतिरिक्त वर्तमान में नवीन लोक मूढ़ताएँ प्रचलित हो गई हैं। उनको सम्मिलित कर प्रथम बार काव्य बद्ध कर स्पष्ट इंगित किया है। देखिये-

बली समा जो फल को फोड़े, हिंसा का वो पाप भरें।
मृत्यु भोज या भण्डारा से, दोनों को संतप्त करें॥
बाँटें खाद्य वस्तु रात में, जो नव आंग्ल वर्ष मानें।
पंचम में मिथ्या सह उपजें, जन्म दिवस सहर्ष मानें॥
धर्म पर्व में फोड़ फटाका, जो असंख्य प्राणी मारें।
रंग डालकर अनर्थ करते, बाटें पत्ती स्वीकारें॥
फूलमाल व कदली से भी, देव सजा हिंसा करते।
मिट्टी पुतले जला व जल में, डुबा, मूढ़ता वे करते॥

उपर्युक्त लोक मूढ़ताएँ वर्तमान में प्रचलन में आई हैं जो त्याज्य हैं। तपस्वी कवि का अपने प्रवचन में भी इन मूढ़ताओं को त्यागने पर जोर रहता है। जो अत्यन्त आवश्यक एवं समीचीन है।

तीर्थोदय काव्य श्रावकाचार, मूलाचार, तत्त्वार्थ सूत्र, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय का काव्य मय सार है। चरणानुयोग को साकार खड़ा कर दिया है। प्रथमानुयोग भी अपना योगदान देता दिख जाता है। करणानुयोग और द्रव्यानुयोग भी अपनी उपस्थिति से श्रीवृद्धि करने में पीछे नहीं है। सत्याणुव्रत में हरिश्चन्द्र का उदाहरण प्रथमानुयोग का साक्षी है अहिंसाणुव्रत में दीवान अमरचन्द प्रसिद्ध हैं, ऐसे अनेक नवीन उदाहरण देकर प्रथमानुयोग के कोष में श्री वृद्धि की है।

जैन धर्म में मठ एवं आश्रम बनाकर श्रमण नहीं रहते। दिगम्बर मुनि परिग्रह मुक्त रहते हैं ये परमेष्ठी कहलाते हैं मूर्छा मुक्त होते हैं, सम्यक् लिंग धारी आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक ये मोक्षमार्गी आर्ष परम्परा में मान्य हैं। ये ही पिच्छिका धारण करने योग्य हैं अन्य मठाधिपति आदि इसके धारण करने के अधिकारी नहीं हैं, ऐसी आगम की देशना को काव्य में कुशलता के साथ निरूपित किया है।

अष्ट मदों को नवीन ढंग से शब्दों में बाँधकर काव्यमय प्रस्तुति की है। ज्ञान मद, पूजा मद, कुल मद, जाति मद, बलमद, ऋिद्धि मद, तपमद, रूपमद सभी को छन्द में बाँधकर सोदाहरण गेय प्रस्तुति की है।

सद्विचारी ही सम्यग्दृष्टि हो सकता है, सम्यग्दर्शन के दश भेदों को भी छन्द में पिरोकर समझने में सुलभता प्रदान की है।

विवाह विवेकी सन्तानों की उपलब्धि के लिए किया जाता है, केवल काम वासना की पूर्ति के लिए नहीं। संतानें मोक्षमार्ग में आगे बढ़ें। धर्म की समुन्नति में सहयोगी बनें।

देखिये इस संयम के संकल्प को काव्य में बाँधा गया है-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गृही विवेकी सन्तानों की, हो उपलब्धि जो चाहे।
करे अत: वह विवाह अपना, जैनी जन बढ़ना चाहे॥
सन्तानें गर मोक्षमार्ग में, जाएँ धर्म समुन्नत हो।
ना सन्तान अगर चाहे तो, ब्रह्मचर्य में उन्नत हो॥

दिगम्बर साधु का संयम भरा सोच उनका शोध है। काम पर विवेक की वल्गा का चिंतन धन्य है। मानव मात्र के लिए सद्प्रेरक कल्याणकारक अनुशीलन है। पंचेन्द्रियों के विषयों में अनासक्ति हो, शील हो, ब्रह्मचर्य हो, शील के बाधक भावों की, स्थितियों की, निमित्तों की खुलकर कवि ने काव्यमय प्रस्तुति की है जो सभी को शीलवान बनने की प्रेरणा देने में सक्षम है।

भक्ष्य-अभक्ष्य, सेव्य-अनुपसेव्य सभी वस्तुओं पर कलम चलाकर जैन आहार की सुन्दर काव्यमय व्याख्या सूक्ष्म चिन्तन व आचरण करने की प्रेरणा देती है।

जल गालन की सूक्ष्मता को दार्शनिक कवि की कलम ने सरलभाषा में बाँधकर पाठक के समक्ष प्रकृत रूप से रख दिया है। सूक्ष्म अहिंसा के पालन में जल छानना और जीवानी कुए में डालना मृदुता के साथ जीव बचाना यह विधि काव्य में देखिये-

किसी पात्र व रस्सी द्वारा, जल निकाल के छानें वे।
मोटा कपड़ा दुहरा होता, धीरे-धीरे छानें वे॥
बिना छना जल गिरे न नीचे, योग्य पात्र हो ध्यान रहे।
जीवानी को नीर सतह पर, धीरे छोड़ें ज्ञान रहे॥

जीवानी को नीर के सतह पर धीरे छोड़ें, इसका विवेक रहे नहीं तो जीव घात हो जाएगा। करुणा की किरणें कवि के हृदय सूर्य से फूट रही हैं। जीवों को बचाने की चिंता हमें चिंतन करने को विवश करने के लिए अत्यन्त सक्षम है।

पंचाणुव्रत की फसल की रक्षा हेतु गुणव्रत शिक्षा व्रतादि की बाढ़ के रूप में सुन्दर विवेचना की है। व्रतों के अतिचारों (दोषों) की काव्यमय अभिव्यक्ति निरतिचार रूप से व्रत पालन की सशक्त प्रेरणा देती है।

जैन दर्शन में जीने की कला के साथ मरने की कला का महान महत्त्व है। मौत को हँसते-हँसते समता भाव से गले लगाना मृत्यु महोत्सव कहलाता है। समाधि मरण साधक का अंतिम पड़ाव होता है। जिसके माध्यम से सुगति या सर्वोतम गति को प्राप्त किया जाता है। मृत्यु महोत्सव की काव्य मय प्रस्तुति काव्य की अनुपम विशेषता है। इसमें सेवा का महात्म्य एवं फल अकल्पनीय है। कहीं निश्चयनय और व्यवहारनय का सरल स्वरूप साकार हुआ है तो कहीं समवसरण के सौन्दर्य का विशद चित्रण भी विद्यमान है।

सम्पूर्ण तीर्थोदय काव्य में प्रमुख रूप से सम्यग्दर्शन,सोलह कारण भावनाएँ एवं व्रत की विधि, विनय, पंचाणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षाव्रत, ग्यारह प्रतिमाएँ, समाधिमरण, समवसरण वर्णन, मुनियों के षड् आवश्यकादि का सुन्दर सरल काव्यमय वर्णन है। जो सहज बोधगम्य है। प्रेरक देशना पूर्ण 'तीर्थोदय काव्य' एक बैठक में पठनीय है।

तीर्थोदय काव्य सम्यग्दर्शन का काव्य है, षोडशकारण भावना का काव्य है। सद्दर्शन की प्राप्ति में मार्ग दर्शन का काव्य है। श्रावकाचार का दिग्दर्शक काव्य है, मूलाचार का दर्शक काव्य है। शुद्ध आचरण के अतिचारों पर नियंत्रण का काव्य है। व्रतों के अतिक्रम, व्यतिक्रम, अनाचारों से रक्षा का काव्य है। संयम के मार्ग का प्रकाशस्तंभी काव्य है।

इसकी जितनी प्रशंसा-अनुशंसा की जाय उतनी कम है-

जिनवाणी का सार सरलता, संयम व्रत निर्दोष करो।
निज को जानो मानो अचरो, निज पर का उद्धार करो॥
-'दिवा'

तीर्थोदय काव्य का यही संदेश है।

तीर्थोदय काव्य के सर्जक मुनिवर श्री आर्जवसागर जी महाराज इस अमूल्य कृति को रचकर धन्यता को प्राप्त हुए हैं उन्हें अन्तरंग से नमोस्तु। हम सब इस काव्य का स्वाध्याय करें और अपने को धन्य करें।

इस मंगल भावना के साथ- 'तीर्थोदय काव्य' आपके हाथ हमेशा रहे।

शाकाहार सदन एल-75, केशर कुंज
हर्षवर्द्धन नगर, भोपाल-3 दूरभाष : 2571119

आचार्य श्री विद्यासागर जी के सुभाषित

❖ आत्मा में जो मूर्तपना आया है वह पुन: अमूर्तता में ढल सकता है, क्योंकि वह संयोगजन्य है, स्वभाव जन्य नहीं। इस प्रकारएक अलग ही तरह का मूर्तपना इस जीव में तैयार हुआहै जिसे न जड़ का कह सकते हैं न चेतन का। ग्रन्थों में इस चिदाभासी कहा गया है।

❖ पाप चोर है और पुण्य पुलिस। शुद्ध भाव से ठ साहूकार के समान है। साहूकारों को खतरा चोरों से रहता है न कि पुलिस से, और चोरों को पुलिस से हमेशा ईर्ष्या रहती है।

❖ पूजन दान स्वाध्याय आदि श्रावक के कर्त्तव्य है। इन कर्त्तव्यों के प्रति हेय बुद्धि कभी नहीं लाना , हाँ! कर्तृत्व के प्रति जरूर लाना।

'सागर बूँद समाय'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अ.शा.पत्र सं. 13011/3/2004 एन. आई. III

सत्यमेव जयते

शिवराज पाटील गृहमंत्री, भारत

SHIVRAJ V. PATIL

गृह मंत्री, भारत

HOME MINISTER, INDIA

प्रिय,

यह मंत्रालय साम्प्रदायिक सद्भाव एवं शांति बनाए रखने के बारे में केन्द्र सरकार की प्रतिबद्धता तथा इस संबंध में कानून प्रवर्तन करने वाली एजेंसियों, विशेषकर राज्य कानून और व्यवस्था तंत्र द्वारा निभाई जाने वाली सतर्क भूमिका के संबंध में समय-समय पर ध्यान आकृष्ट करता रहा है ताकि हमारे समाज के बहुभाषी, बहुजातीय, बहुधर्मी स्वरूप को बनाए रखने के लिए साम्प्रदायिक ताकतों पर प्रभावकारी ढंग सेअंकुश लगाया जा सके। हाल के वर्षों में कई बार ऐसे अवसर आए हैं जब साम्प्रदायिकता के विष के कारण हमारे देश के धर्म-निरपेक्ष स्वरूप तथा इसकी एकता एवं अखण्डता के लिए खतरा पैदा हो गया। साम्प्रदायिक सद्भाव बनाए रखने तथा इसे बढ़ावा देने के लिए केन्द्र सरकार ने कई कदम उठाए हैं तथा राज्य सरकारों को दिशा-निर्देश जारी किये हैं। इसके अलावा, संसद ने भी पूजा स्थल (विशेष उपबंध) अधिनियम, 1991 अधिनियमित किया था ताकि किसी पूजा स्थल के सम्परिवर्तन को रोका जा सके और यह व्यवस्था की जा सके कि किसी पूजा स्थल का धार्मिक स्वरूप वैसा ही बना रहे जैसा कि वह 15 अगस्त, 1947 के दिन था। साम्प्रदायिक शांति एवं सद्भावना को समाप्त करने पर आमादा साम्प्रदायिक व्यक्तियों एवं संगठनों की गतिविधियों पर अंकुश लगाने के लिए यह एक महत्वपूर्ण कदम था।

२. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि हमें इस अधिनियम के उपबंधों को कड़ाई से और प्रभावी ढंग से लागू करना है और यह काम राज्य सरकारों के कानून एवं व्यवस्थातंत्र की वचन बद्धता एवं सहयोग के बिना संभव नहीं हो सकता है। ऐसा करते समय, राज्य सरकारों को यह भी सुनिश्चित करना है कि इस अधिनियम के उपबंधों को चयनात्मक आधार पर क्रियान्वित न किया जाए और यह कि इसे किसी भी समुदाय के प्रति भेदभाव अथवा विद्वेष की भावना से लागू न किया जाए।

३. अत: मेरा आपसे पुन: विनम्र निवेदन है कि आपअपने राज्य में इस अधिनियम के कार्यान्वयन के स्वरूप और तरीके की पुनरीक्षा करें। विधि प्रवर्तन एजेंसियों को यह सुनिश्चित करने की सलाह दी जानी चाहिए कि वे अधिनियम को लागू करने का अपना काम कड़ाई से और बिना किसी पक्षपात के करें। इससे किसी के मन में, विशेष रूप से अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों के मन में, यह संदेश पैदा नहीं होना चाहिए कि यह कदम उनके विरुद्ध किसी तरह के राजनैतिक,प्रशासनिक या किसी अन्य उद्देश्य अथवा पूर्वाग्रह की भावना से उठाया जा रहा है।

कृपया इस संबंध में किये गए अपने प्रयासों से हमें अवगत कराते रहें। मैं आपको एक बार पुन: आश्वस्त करना चाहता हूँ कि केन्द्र सरकार हर हाल में साम्प्रदायिक सद्भाव एवं शांति बनाए रखने के लिए वचनबद्ध है और मुझे विश्वास है कि आप भी अपनी इस जिम्मेदारी को समझते होंगे।

५. मैं आभारी हूँ यदि आप इस संबंध में की गई कार्रवाई से अवगत कराने का कष्ट करें।

सादर,

भवदीय

हस्ताक्षर

(शिवराज पाटील)

सेवा में,

सभी राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों के मुख्यमंत्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाचार

युवा जैन प्रतिभा सम्मान समारोह

परमपूज्य संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के आशीर्वाद से उनके परम शिष्य पूज्य मुनिश्री क्षमासागर जी, मुनिश्री भव्य सागर जी के सान्निध्य में यंग जैना एवार्ड म.प्र. की उद्योग नगरी अशोकनगर में 23 व 24 अक्टूबर वर्ष 2004 को हजारों की उपस्थिति के बीच आयोजित हुआ।

यह सम्मान शिक्षा के क्षेत्र में अच्छी सफलता पाने वाले जैन छात्रों को प्रतिवर्ष दिया जाता है। इसका उद्देश्य युवाओं से मधुर संवाद स्थापित करना, सामाजिक स्तर पर उनकी प्रशंसा करना और उन्हें नैतिक मूल्यों के प्रति जागरूक करना है। मुख्य अतिथि श्रीमती प्रतिभा जैन जयपुर जिला एवं सत्र न्यायाधीश श्रीमति विमला जैन भोपाल ने प्रत्येक बच्चे को गले में मैडल पहनाकर ट्रॉफी प्रदान कर सम्मानित किया। युवा जैन प्रतिभा सम्मान समारोह का कार्यक्रम दिनांक 24.10.2004 को प्रात: 8 बजे व दोपहर 12:30 से प्रारंभ हुआ।

सर्वप्रथम मैत्री समूह के संदेश और उद्देश्य श्री पी.एल. बैनाडा जी ने कार्यसभा को अवगत कराये। उन्होंने अपने उद्बोधन में कहा कि, 'आपने अपने जीवन में खूब मेहनत और लगन से जो सफलता अर्जित की उससे समूची जैन समाज गौरवान्वित हुई है। आपको यंग जैना अवार्ड से सम्मानित करते हुए हमारी हार्दिक भावना है कि आपका व्यक्तित्व उज्जवल बने। आपका जीवनऔरों को सद्प्रेरणा दे। आपअपनी संस्कृति, समाज, धर्म और देश की गरिमा को बनाए रखने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते रहें।

किसी एक विधा में प्रवीण होने से जीवन में सुंदरता, पूर्णता और कलात्मकता नहीं आती। जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए इन्द्रधनुष के रंगों की तरह जीवन में भी विविधता होनी चाहिए। कला, शिल्प, वाणिज्य और विज्ञान की नई-नई विधाओं की तरफ बढ़ने का उत्साह होना चाहिए। जीवन में गतिशीलता और रचनात्मकता का समावेश भी होना चाहिए। आप पढ़ाई का अर्थ मात्र एक बेहतर नौकरी हासिल कर लेना न समझें बल्कि पढ़-लिखकर एक संवेदनशील बेहतरीन इंसान बनें।'

मैत्री समूह के उद्देश्य

1. जैन धर्म, दर्शन और अध्यात्म के व्यवहारिक एवं वैज्ञानिक स्वरूप को प्रस्तुत करना।

2. जैन छात्र-छात्राओं की बहुमुखी प्रतिभा को विकसित करने का प्रयत्न करना।

3. प्रतिभावना जैन छात्र-छात्राओं को उच्चशिक्षा हेतु उचित मार्गदर्शन देना और उनसे सतत् सम्पर्क बनाये रखना।

4. उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले जैन छात्र-छात्राओं को अध्ययन के दौरान जिनदर्शन, दिन में भोजन और शाकाहारी सात्विक भोजन करने की प्रेरणा देना और इस कार्य में उनकी यथासंभव मदद करना।

5. उच्च शिक्षा हेतु जैन छात्र-छात्राओं को स्कॉलरशिप एवं अवार्ड देकर प्रोत्साहित करना।

6. जैन छात्र-छात्राओं को भारतीय संस्कृति और नैतिक मूल्यों के प्रति जागरूक करना।

पूज्य मुनिश्री क्षमासागर जी ने अपने आशीर्वाद में कहा कि आप अच्छा सोचें , अच्छा करें। यंग जैना अवार्ड में सम्मिलित सभी युवाओं से मिलकर अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ। इन आत्मीय और दुर्लभ क्षणों में यदि धर्म, दर्शन, अध्यात्म और विज्ञान की स्पष्ट छवि हमारे हृदय में अंकित हो सके और हम अपने जीवन को अच्छा बनाने के लिए संकल्पित हो सकें, तो यह इस सम्मान समारोह की श्रेष्ठतम उपलब्धि होगी।

हमें यह जानकर गौरव होना चाहिए कि अहिंसा, करूणा और प्रेम हमारा धर्म है। सत्य के प्रति समर्पित होकर निरन्तर आत्म विकास करना हमारा दर्शन (फिलॉसॅफी) है। आत्म-संतोष और साम्य-भाव रखना हमारी आध्यात्मिक चेतना का मधुर स्वर है। श्रद्धा और सदाचार से समन्वित ज्ञान ही हमारा विज्ञान है।

यह सच है कि आज वातावरण में अनेकों विकृतियाँ और विषमताएँ हैं। इसके बावजूद भी हमारा कर्तव्य है कि हम अच्छा सोचें और अच्छा करें। भोगवादी सभ्यता के निरन्तर बढ़ते दबाव के बावजूद हम स्वस्थ, संतुलित और मर्यादित जीवन जीने की कला सीखें। खान-पान और रहन-सहन में निरन्तर बढ़ती हुई विलासिता के बावजूद भी हम सादगी और शालीनता को बढ़ावा दें। देश में तेजी से फैलती हुई हिंसा, झूठ, चोरी, अश्लीलता और अंडा, मांस, शराब जैसी बुरी आदतों से बचकर हम नैतिक और चारित्रिक रूप से सुदृढ़ बनें।

संयुक्त परिवारों के विघटन और संबंधों के बीच बढ़ती हुई औपचारिकता के बावजूद भी हम परस्पर आत्मीयता और सहजता कायम रखने का प्रयास करते रहें। धार्मिक आयोजनों, धर्मस्थलों और धर्मगुरूओं में निरन्तर बढ़ते आडम्बर और प्रदर्शन को बढ़ावा न देते हुए हम धर्म की तर्कसंगत, वैज्ञानिक सही समझ विकसित करने के लिए प्रयत्नशील रहें।

शिक्षा के माध्यम से हम अपने जीवन को सहज, सरल और संवेदनशील बनाएँ। हम पढ़-लिखकर धन-पैसे के लालच में हिंसक उद्योग-धंधों को न अपनाएँ, बल्कि अपनी अहिंसक संस्कृति और धर्म की गौरवशाली परम्परा को आगे बढ़ाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दें।

हमें विश्वास है कि इस सम्मान समारोह में सहभागी सभी प्रतिभाशाली युवा हमारी भावनाओं का सम्मान करेंगे और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने जीवन को उन्नत बनायेंगे।

मैत्री समूह की ओर से आप सभी को हार्दिक बधाई और उज्जवल भविष्य के लिए ढेर सारी शुभकामनाएँ

सुरेश जैन, मारौरा

गिरनारतीर्थ क्षेत्र की पाँचवी टोंक पर

श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष डॉ. फूलचन्द जैन 'प्रेमी' सहित अनेक तीर्थयात्रियों पर, पंडों द्वारा किये गये प्राणघातक हमले की तीव्र निन्दा दोषियों को शीघ्र गिरफ्तार करने की माँग

22 वें तीर्थंकर भगवान श्री नेमिनाथ की निर्वाण स्थली गिरनार तीर्थक्षेत्र की पाँचवी टोंक पर दर्शनार्थ गये श्री अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष डॉ. फूलचन्द्र जैन प्रेमी (वाराणसी) तथा उनके साथ ही यात्रा कर रहे कर्नाटक, दिल्ली, राजस्थान एवं मध्यप्रदेश आदि के यात्रियों (जिनमें महिलायें एवं बच्चे भी सम्मिलित थे) को दिनांक 28 अक्टूबर 2004 को कमण्डल कुण्ड के हिन्दु साधुओं महन्तों द्वारा लाठियों, घूंसों से मार-मार कर घायल कर देने के दुष्कृत्य की श्री अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद् तीव्र भर्त्सना एवं निन्दा करती है। सम्पूर्ण जैन समाज इस घटना से अत्यन्त क्षुभित एवं दुःखी है। निहत्थे एवं अहिंसक तीर्थयात्रियों पर उक्त तथाकथित साधु-महन्तों द्वारा किया गया हिंसक हमला जैन-अल्पसंख्यकों पर निरन्तर बढ़ रहे अन्याय का प्रतीक है। जिसे तत्काल प्रभावी तरीके से रोका जाना चाहिए। यहाँ उल्लेखनीय है कि गुजरात प्रान्त के जूनागढ़ जिले में स्थित इस प्रसिद्ध 'जैनतीर्थ' पर कब्जा करने की नीयत से बहुसंख्यक हिन्दू समाज के पंडे/साधुमहन्त अनेक वर्षों से जैन तीर्थयात्रियों के साथ अन्याय पूर्ण बर्ताव करते आ रहे हैं। जिनमें श्री नरेन्द्रमोदी नीत भाजपा सरकार बनने तथा खुला राजकीय संरक्षण इन तत्वों को मिलने के बाद और तेजी आयी है। वहाँ स्थित जैनप्रतीकों को विरूपित किया जा रहा है। भगवान नेमिनाथ के निर्वाण के प्रतीक चरण चिन्हों को फूलों से ढँककर उनके जैनरीति से दर्शन, पूजन, वन्दन, अभिषेक करने यहाँ तक कि भगवान नेमिनाथ की जय बोलने पर इन पंडों ने घोषित रूप से अवैधानिक प्रतिबन्ध लगा रखा है। अब इन पंडों का हौसला इतना बढ़ गया है कि हजारों लोगों का प्रतिनिधित्व करने वाले जैन-नेताओं, मासूम महिलाओं और बच्चों को भी अपने आक्रोश का शिकार बनाने से नहीं चूक रहे हैं। सम्पूर्ण जैन समाज चिन्तित है तथा न्याय की माँग शासन/प्रशासन से कर रही है।

उक्त घटना की रिपोर्ट दिनांक 28 अक्टूबर 2004 को 1930 बजे जूनागढ़ तालुका पुलिस थाना में आई.पी.सी. की धारा 323/504/506 (2), 114 बी.पी.ए. 135 के तहत डॉ. फूलचन्द्र जैन प्रेमी (वाराणसी) ने दर्ज करवायी है।

श्री अखिल भारत वर्षीय दिगम्बर जैन विद्वतपरिषद् भारत सरकार के प्रधानमंत्री श्री मनमोहन सिंह एवं गुजरात के मुख्यमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी से माँग करती है कि वह प्रभावी कार्यवाही कर दोषियों को दण्डित करवायें तथा गुजरात तीर्थ की पहाड़ी पर स्थित दूसरी, तीसरी, चौथी एवं पाँचवी टोंक को हिन्दू पंडों के आतंक से मुक्त करवाकर जैन तीर्थयात्रियों लिए दर्शन, पूजन आदि की समुचित व्यवस्था करें।

डॉ. सुरेन्द्र जैन, बुरहानपुर (म.प्र.)

श्रावकाचार संग्रह अनुशीलन संगोष्ठी सम्पन्न

सूरत (गुजरात) यहाँ श्री चन्द्रप्रभ दि.जैन मंदिर, सूरत में वर्षायोग कर रहे परम पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज, पूज्य क्षु. श्री गंभीरसागरजी महाराज एवं पू.क्षुल्लक श्री धैर्यसागर जी महाराज के सान्निध्य में श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के तत्वावधान तथा डॉ. शेखरचन्द्र जैन (अहमदाबाद) एवं डॉ. अशोक कुमार जैन (लाड़नूं) के संयोजकत्व में श्रावकाचार-संग्रह अनुशीलन संगोष्ठी दि. 23 से 25 अक्टूबर 2004 तक सम्पन्न हुई। जिसमें 49 विद्वानों ने लगभग 200 विद्वानों एवं हजारों जनसमुदाय के मध्य श्रावकाचार के विविध पक्षों पर आलेख वाचन किया एवं संबंधित चर्चा में भाग लिया। पठित आलेखों एवं उपस्थित शंकाओं पर परमपूज्य मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज के विस्तृत समीक्षात्मक प्रवचन हुए जिनसे समाज एवं विद्वानों को सम्यक् दिशाबोध मिला। स्थानीय संयोजक श्री शैलेष भाई कापड़िया (संपादक - जैन मित्र) थे।

संगोष्ठी का उद्‌घाटन श्री प्रेमकुमार शारदा (कुलपति - वीर कवि नर्मदा विश्वविद्यालय, सूरत) की अध्यक्षता, श्री पच्चीगर जी (उपाध्यक्ष - सार्वजनिक शिक्षा संस्थान, सूरत), श्री रमेशचन्द एडवोकेट (अध्यक्ष - बार कौंसिल, सूरत) एवं श्री गौतम भाई पटेल (अहमदाबाद) के विशिष्ट आतिथ्य में सम्पन्न हुआ। संयोजन डॉ. शेखरचन्द जैन ने एवं आभार डॉ. अशोक कुमार जैन ने व्यक्त किया। इस सत्र में डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन (मंत्री - श्री अ.भा.दि.जैन विद्वत्वपरिषद, बुरहानपुर) ने श्रावकाचार संग्रह में दान, दाता, देय का स्वरूप एवं फलाफल विचार तथा डॉ. अनेकांत जैन (दिल्ली) ने श्रावकाचार संग्रह में श्रावक का दैनिक धार्मिक एवं आवश्यक स्वरूप विचार विषयक शोधलेखों का वाचन किया।

संगोष्ठी में कुल 8 सत्र चले जिनमें डॉ. रतनचन्द्र जैन (भोपाल) ने - सम्यग्दर्शन के दोषों का स्वरूप विवेचन एवं हानियाँ, पं. लालचन्द जैन राकेश (गंजबासौदा) ने - भोज्य, भोजक एवं भोजन विधि, डॉ. अनिल कुमार जैन (अहमदाबाद) ने - ब्रह्मचर्याणुव्रत का राष्ट्रीय, सामाजिक एवं पर्यावरणीय महत्व, डॉ. आराधना जैन (गंजबासौदा) ने - मिथ्यात्व एवं षडायतन, डॉ. शीतलचन्द जैन (जयपुर) ने सामायिक, प्रतिक्रमण स्वरूप, विधि एवं महत्व, डॉ. सनतकुमार जैन (जयपुर) ने - पंच इंद्रियों के विषय सेवन एवं श्रावक की भूमिका, डॉ. कुलभूषण लोखंडे (सोलापुर) ने - वर्तमान युग में बढ़ता हुआ शिथिलाचार।

कारण एवं समाधान, डॉ. ज्योति जैन (खतौली) ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करूणादान एवं कन्यादान का स्वरूप तथा वर्तमान स्थिति, डॉ. नेमिचन्द्र जैन (खुरई) ने आप्त (देव) का स्वरूप एवं त्रिकालदर्शन, वन्दन विधि, श्रीमती निर्मला संघी (जयपुर) ने षट्द्रव्य, सप्त तत्व एवं नव पदार्थ विवेचन, डॉ.बी.एल.सेठी (झुंझनूं) ने कर्मबंध एवं कारण विवेचना, श्रीमती क्रांति जैन (लाड़नूं) ने - अतिचार, अन्तराय एवं प्रायश्चित स्वरूप मीमांसा, डॉ. विमला जैन (फिरोजाबाद) ने चतुर्गति स्वरूप भ्रमण कारण एवं निवारण, श्रीमती मुन्नीपुष्पा जैन (वाराणसी) ने श्रावकाचार संग्रह के संपादक पं.हीरालाल जैन का व्यक्तित्व एवं कृतित्व, श्री गौतम भाई पटेल (अहमदाबाद) ने भारतीय संस्कृति, पं. मूलचन्द लुहाड़िया (मदनगंज-किशनगढ़) ने - अष्टमूलगुण एवं वर्तमान परिवेश, डॉ.रमेशचन्द्र जैन (बिजनौर) ने -कुन्दकुन्द श्रावकाचार का समीक्षात्मक अनुशीलन, डॉ. कमलेश कुमार जैन (वाराणसी) ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार का समीक्षात्मक अनुशीलन, डॉ. राजहंस गुप्ता (बिजनौर ने) A Contempoarary View of the Human Aspect As Debicted in Srawakachara Sangrah , डॉ. शिवसागर त्रिपाठी (जयपुर) ने गृहस्थ की दैनिक चर्या एवं वैदिक दर्शन में वर्णित गृहस्थचर्या का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. जयकुमार जैन (मुजफ्फरनगर) ने व्रतों की तात्विक पृष्ठभूमि, डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन (सनावद) ने जैन पर्व, पं. राकेश जैन (सांगानेर) ने मंदिरे न करणीया: चतुरशीत्यासादन दोषा:, डॉ. राका जैन (लखनऊ) ने जैन श्रावकाचार (आदिपुराण, तिरूकुरल आदि के संदर्भ में), पं.विनोद कुमार जैन (रजबांस) ने श्रावकाचार और भारतीय संविधान, डा्. स्नेहरानी जैन (सागर) ने श्रावकाचार का पाश्चातय दर्शन पर प्रभाव, ब्र.भरत जैन (जयपुर) ने प्राकृत वाङ्मय में श्रावकाचार डॉ. विद्यावती जैन (गनौड़ा) ने तिरेपन क्रियाओं का स्वरूप एवं उनका मनोवैज्ञानिक अध्ययन, डॉ.अभयप्रकाश जैन (ग्वालियर) ने स्वर, स्व एवं ज्योतिष व्यवस्था, श्री दिनेशकुमार जैन (जयपुर) ने ध्यान एवं योग, डॉ. विजय कुमार जैन (लखनऊ) ने जिनबिम्ब, जिनालय के निर्माण का फलाफल विचार, डॉ. कस्तूरचन्द जैन सुमन (महावीरजी) ने कथा एवं उपकथायें, प्रा.अरूण कुमार जैन (ब्यावर) ने व्याकरण एवं छन्द वैशिष्ट्य, डॉ. संतोषकुमार जैन (सीकर) ने धर्मशाला, वसतिका, औषधालय आदि षड् आयतनों का विमर्श, डॉ. फूलचन्द जैन प्रेमी (वाराणसी) ने जैन जीवन शैली, पं. अभय कुमार जैन (बीना) ने सम्यग्दर्शन का स्वरूप एवं महिमा, पं.निहालचन्द जैन (बीना) ने रात्रि भोजन निषेध, वैज्ञानिक तथा आरोग्यपरक विश्लेषण, डॉ. श्रेयांसकुमार जैन (बड़ौत) ने अष्टाङ्ग का स्वरूप विमर्श, डॉ. श्रीरंजनसूरिदेव (पटना) ने श्रावक का आचार एवं मनुस्मृति में गृहस्थ का तुलनात्मक अनुशीलन, डॉ. शुभचन्द जैन (मैसूर) ने Shrawakacara Works in Kannada , श्री इब्राहिम कुरैशी (भोपाल) ने जैन संस्कृति की विशेषताएँ, डॉ. शेखरचन्द जैन (अहमदाबाद) ने दीक्षान्वय क्रियाएँ एवं ब्राह्मण तथा द्विजों का सांस्कृतिक अध्ययन और डॉ. अशोक कुमार जैन (लाड़नूं) ने दार्शनिक मीमांसा विषयक महत्वपूर्ण शोधालेखों का वाचन श्रावकाचार संग्रह (पाँच भाग) के संदर्भ में किया।

संगोष्ठी के पुण्यार्जक

1. श्री चिरंजीलाल इन्दरचन्द जैन, सुरेश कुमार, राहुल कुमार छावड़ा (सीकर वाले) सूरत

2. श्रीमती शकुन्तलादेवी, पदमचन्द जैन, राजीव भाई, संजय भाई (हाथरस वाले) सूरत थे।

संगोष्ठी की सफलता में पुण्यार्जकों के अतिरिक्त वर्षायोग समिति के अध्यक्ष श्री ओमप्रकाश जैन, महामंत्री श्री कमलेश गाँधी एवं सर्व श्री रमेश गंगवाल, रमेश भाई शाह, अशोक कुमार विनायका, नरेशचन्द जैन, प्रकाश संघही, अरविन्द भाई गाँधी, महेन्द्रशाह, मनोहर जैन, प्रदीप शाह, राजीव सेठ, पवन पाटनी आदि का महनीय योगदान रहा।

संगोष्ठी के मध्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत 11 महत्वपूर्ण शोध प्रबंधों के प्रकाशन का भार सूरत-समाज ने वहन करना स्वीकार किया। इस अवसर पर विद्वानों को संगोष्ठी किट, प्रशस्तिपत्र, स्मृतिभेंट, मानदेय एवं अध्यात्म अमृतकलश (टीकाकार - पं.जगन्मोहन लाल जैन), गणेशवर्णी चित्रकथा, श्रावक धर्म (लेखक - डॉ. दीपक जैन), संस्कृति प्रहरी मुनि श्री सुधासागर (रचयिता - पं. लालचन्द जैन राकेश) मुनि श्री सुधासागर व्यक्तित्व और सृजन (लेखक - डॉ. दीपक जैन), हरिवंश पुराण परिशीलन (सम्पादक - प्रा. अरूणकुमार जैन एवं डॉ. सुरेन्द्र जैन भारती), जैन दर्शन में कर्मवाद (ले.डॉ.शेखरचन्द जैन), आचार्य कवि विद्यासागर का काव्य वैभव (ले.डॉ. शेखरचन्द जैन), विद्वद् विमर्श, पार्श्व ज्योति (मासिक) आदि कृतियाँ भेंट स्वरूप प्रदान की गयीं।

श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् का 25 वाँ अधिवेशन सम्पन्न जैन सम्राज में शास्त्री परिषद् एवं विद्वत्परिषद् ही मान्य

सूरत (गुजरात) परमपूज्य संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के सुयोग्य शिष्य परम जिनधर्मप्रभावक, आध्यात्मिक संत, तीर्थ जीर्णोद्धारक मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज, पूज्य क्षु.श्री गंभीरसागर जी महाराज, पूज्य क्षु. श्री धैर्यसागर जी महाराज के सान्निध्य, ब्र. संजय भैया, ब्र. जिनेश भैया (जबलपुर) ब्र. अजित जैन, ब्र. सुकान्त जैन सहित द्विशताधिक विद्वानों की उपस्थिति तथा प्रो. डॉ. फूलचंद जैन 'प्रेमी' की अध्यक्षता में दि. २५ एवं २६ अक्टूबर २००४ को श्री चन्द्रप्रभु दि. जैन मंदिर पारले पोईन्ट, सूरत स्थित विद्यापुरम् (रतनबाग) में हजारों सामाजिकों के मध्य श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् का २५ वाँ अधिवेशन महती प्रभावना पूर्वक सम्पन्न हुआ। अधिवशेन में समागत विद्वानों का परमपूज्य मुनिपुंगव श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुधासागर जी महाराज ने अपना शुभाशीर्वाद प्रदान किया और कहा कि जैन समाज में विद्वानों की दो ही परिषदें मान्य हैं। १. अ.भा.दि. जैन शास्त्री परिषद् एवं 2. श्री अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद्। आगे भी यही मान्य रहेंगी क्योंकि इनकी आस्था श्रमण संस्कृति में है। इन्होंने देव, शास्त्र, गुरु के विरुद्ध कोई आचरण नहीं किया। पूज्य मुनिश्री ने विद्वानों के प्रति एक आदर्श आचार संहिता भी बताई और परिषद् पदाधिकारियों को निर्देश दिया कि वे इसका कड़ाई से पालन समस्त सदस्यों से करवायें। सम्पूर्ण गुजरात में यह अपनी तरह का प्रथम आयोजन था जिसमें इतनी अधिक संख्या में विद्वान सम्मिलित हुए। सूरत समाज के सौजन्य से सभी विद्वान श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र महुवा जी गये और भगवान पार्श्वनाथ के दर्शन किये।

प्रस्ताव पारित -

इस अवसर पर परस्पर विचार-विमर्श पूर्वक श्री गिरनार दि. जैन तीर्थ क्षेत्र को अतिक्रमणकारियों (पंडों एवं बाबाओं) से मुक्त कराकर जैनों को परम्परागत संविधान प्रदत्त पूजा अर्चना का अधिकार दिलाने की केन्द्रीय भारत सरकार एवं गुजरात प्रांतीय सरकार से मांग की गई। जैन संस्कार शिक्षण शिविरों हेतु संयोजन एवं सहयोग प्रदान करने, कहानपन्थ एवं व्यक्तिनिष्ठ संस्थाओं के प्रति निकटता रखने वाले तथा उनकी सदस्यता रखने वाले विद्वत्परिषद् सदस्यों से उक्त संस्थाओं को छोड़ने अथवा विद्वत्परिषद् छोड़ने, विभिन्न प्रदेशों में कार्यरत स्थानीय संस्थाओं-नगरपालिका आदि से मार्केटिंग नियमों का कड़ाई से पालन करते हुए खुले आम मांस अंडा आदि की विक्री को प्रतिबंधित करने-दिगम्बर जैन मंदिरों में प्राप्त आय से प्रतिवर्ष 1 मूल ग्रंथ प्रकाशित करने तथा पाठशालायें संचालित करने, विद्वत्परिषद् प्रतिष्ठाचार्य प्रकोष्ठ के विद्वानों को पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं विधानादि के निर्देशन हेतु आमंत्रित करने जिन मंदिरों में उसकी स्थापनाकाल में जो पूजन पद्धति चलती थी उसे चलने देने, गुजरात प्रांतीय सरकार द्वारा संस्कृत-प्राकृत विश्वविद्यालय स्थापित करने विद्वत्परिषद् के सुयोग्य विद्वानों से प्रकाशन पूर्व पुस्तकें संपादित करवाने, संस्कार शिविरों के आयोजन, पत्रकार प्रकोष्ठ की स्थापना कर उसे सुदृढ़ बनाने, 'अनेकान्त' पत्रिका में प्रकाशित इतिहास और पुरातत्व संबंधी लेखों को संकलित कर प्रकाशित करने जैनेतर पत्र-पत्रिकाओं एवं टी.वी. आदि में जैन धर्मानुकूल विचारों के प्रकाशन एवं प्रसारण हेतु प्रयास करने आदि निर्णय प्रस्ताव के रूप में पारित किये गये। जिन्हें विद्वान सदस्यों तथा समाज के सहयोग से पूरा किया जायेगा। अधिवेशन का संचालन डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन (मंत्री - श्री आ.भा.दि.जैन विद्वत्परिषद्) ने किया।

पुरस्कार समर्पण

अधिवेशन के मध्य डॉ. नेमिचन्द्र जैन (खुरई) एवं प्रा. अरूणकुमार जैन (व्यावर) को क्रमश: जिनशासन सेवी एवं व्याकरणमर्मज्ञ उपाधि के साथ पू.क्षु. गणेशप्रसाद वर्णी स्मृति विद्वत्परिषद् पुरस्कार (राशि ५१०१ रू.) शाल, श्रीफल एवं प्रशस्तिपत्र के साथ क्रमश: वर्ष २००३ एवं २००४ के लिये प्रदान किये गये। इसी तरह गुरूवर्य गोपालदास वरैया स्मृति विद्वत्परिषद पुरस्कार (राशि ५१०१रू, शाल श्रीफल, प्रशस्तिपत्र के साथ) वर्ष २००३ के लिए श्रीमती डॉ. राका जैन (लखनऊ) को उनकी शोधकृति 'जीवन्धर चम्पू सौरभ' पर एवं वर्ष २००४ के लिये यह पुरस्कार डॉ. अशोक कुमार जैन (लाडनूं) को उनकी शोधकृति 'महाकवि आचार्य श्री ज्ञानसागर महाराज का दार्शनिक अवदान' पर प्रदान किया गया। इस अवसर पर डॉ. राका जैन को 'अपूर्व मेधावती' एवं डॉ. अशोक कुमार जैन को 'दर्शन केसरी' की उपाधि से सम्मानित किया गया। पुरस्कार समारोह का संचालन पुरस्कार समिति के संयोजक डॉ. जय कुमार जैन (मुजफ्फर नगर) ने किया।

प्रतिष्ठाचार्य प्रकोष्ठ की बैठक

अधिवेशन की श्रृंखला में 'विद्वत्परिषद्-प्रतिष्ठाचार्य प्रकोष्ठ' की बैठक डॉ. नेमिचन्द्र जैन (खुरई) की अध्यक्षता, डॉ. फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी' के मुख्यातिथ्य एवं पं. विनोद कुमार जैन (रजबांस) के संयोजकत्व में संपन्न हुई, जिसमें निर्णय लिया गया कि सभी विद्वान विधि-विधान, प्रतिष्ठा आदि कार्यों में एकरूपता अपनायें। इस हेतु प्रशिक्षण शिविर आयोजित करने का भी निर्णय लिया गया।

पुरस्कारों के लिये आजीवन राशि देने की घोषणा

श्री अ.भा.दि.जैन विद्वत्परिषद् द्वारा प्रतिवर्ष दिये जाने वाल पू.क्षु.श्री गणेशप्रसाद वर्णी स्मृति विद्वत्परिषद पुरस्कार एवं गुरुवर्य गोपाल दास वरैया स्मृति विद्वत्परिषद् पुरस्कार तथा महाकवि आचार्य श्री ज्ञानसागर जी पुरस्कार (आचार्य ज्ञान सागर वागर्थ विमर्श केन्द्र, व्याबर से प्रदत्त) की राशि प्रत्येक वर्ष पुरस्कार समर्पण समारोह प.पू. मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज के सान्निध्य में आयोजित करने पर श्री राजेन्द्र नाथूलाल जैन मेमोरियल चैरिटेबल ट्रस्ट सूरत द्वारा प्रदान किये जायेंगे। इस आशय की घोषणा ट्रस्ट की ओर से श्रीमति मुन्नी देवी, श्री ज्ञानेन्द्र जैन, श्री संजय जैन एवं श्री नीरज जैन (अजमेर वालों) ने की। विद्वानों ने उक्त महानुभावों का शाल, श्रीफल पुष्पहार आदि से सम्मान किया गया।

अधिवेशन में विद्वानों द्वारा लिखित ११ शोध प्रबंधों के प्रकाशन का दायित्व श्री सकल दिगम्बर जैन समाज सूरत ने ग्रहण किया। इस अवसर पर पूर्व में दिवंगत पं. पूर्णचन्द्र जैन 'सुमन' (दुर्ग) प्रो. के.के.जैन (बीना), श्री राजेन्द्र कुमार जैन (व्याबर) एवं साहूरमेशचन्द्र जैन (दिल्ली) आदि के निधन को अपूरणीय क्षति बताते हुए हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित की गयी।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन
मंत्री- श्री अ.भा.दि.जैन विद्वत्परिषद्
एल-६५, न्यू इन्दिरा नगर, बुरहानपुर (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिविर जो हृदय में इतिहास लिख गया

सिवनी : परम् पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परम् शुभाशीर्वाद से प.पू. मुनि श्री समतासागर जी महाराज एवं पू.ऐ. श्री निश्चयसागर जी महाराज के सान्निध्य एवं कुशल मार्गदर्शन में सम्यक ज्ञान एवं सम्यक संस्कारों की संवृद्धि हेतु एक भव्य ज्ञान-विद्या शिक्षण शिविर दिनाँक १८ अक्टूबर से २७ अक्टूबर तक दिगम्बर जैन धर्मशाला में आयोजित किया गया।

इस शिविर में जबलपुर के ब्रम्हचारी भैया त्रिलोक जी, बंडा से ब्रम्हचारी भैया सनत जी, भोपाल से ब्रम्हचारी भैया महेन्द्र जी एवं भैया अनिल जी, प.रमेश चंद जी, जबलपुर से ही भैया सतीश जी, भैया पुष्पेन्द्र जी एवं गंजबासौदा से पं.डा.रमेशचंद जी भारिल्ल आदि विद्वान आमंत्रित किये गये थे। इन सभी विद्वानों ने धर्म की शिक्षा सहज-सरल रूप में शिविरार्थियों को प्रदान की।

आचार्य श्री विद्यासागर जी के आज्ञानुवर्ति परम प्रभावक शिष्य मुनि श्री समतासागर जी महाराज एवं पू. ऐलक श्री निश्चयसागर जी महाराज का सान्निध्य तो शिविरार्थी ही नहीं संपूर्ण समाज के लिए चिरस्मरणीय रहेगा। उन्होंने अपनी सहज-सरल एवं सुबोध भाषा में धर्म के गहन-गंभीर विषयों को जिस ढंग से प्रस्तुत किया उससे सभी भाव-विभोर हो गये तथा शिविरार्थियों को पता भी नहीं लगा कि कैसे शिविर के 10 दिन बीत गये। 17 अक्टूबर को जब इस ज्ञान विद्या शिक्षण शिविर का दीप प्रज्जवलित हुआ था तब कोई भी नहीं जानता था कि इस शिविर से उठने वाली ज्ञान की किरणें उन्हें कुछ इस तरह से बाँधेगी कि शिविर समाप्ति का उन्हें एहसास भी नहीं हो पायेगा।

शिविरार्थियों के लिये वह दिन आ ही गया जब 10 दिन के पश्चात 27 अक्टूबर को उनके द्वारा किये गये ज्ञानाभ्यास की परीक्षा लिखित में ली जानी थी। प्रात: ७:४५ पर प्रवचन हाल परीक्षार्थियों की उपस्थिति से खचाखच भरा था। सभी के चेहरे पर विद्यार्थी की भाँति भय तथा उत्साह स्पष्ट झलक रहा था। मुनि संघ की उपस्थिति में 'जीवन हम आदर्श बनावें, अनुशासन के नियम निभावें' के सामूहिक स्वर-गान से प्रार्थना हुई। तत्पश्चात् वर्षायोग समिति के कार्यकर्त्ताओं एवं शिक्षाविदों द्वारा प्रश्नपत्र अनावृत कर विषय से संबंधित अध्यापकों को सौंप दिये गये। मुनि श्री ने प्रश्नपत्रों की संक्षिप्त जानकारी दी। तत्पश्चात् शीघ्र ही अध्यापकों द्वारा शिविर में भाग लेने वाले शिविरार्थियों को हल करने हेतु प्रश्नपत्र दे दिये गये।

शिविर में पहला भाग, दूसरा भाग, तीसरा भाग, चौथा भाग, छहढ़ाला एवं तत्वार्थसूत्र का सूक्ष्म अध्ययन कराया गया। प्रतिदिन प्रात: ७ बजे, दोपहर में ३ बजे एवं रात्रि में ८ बजे कक्षायें लगाई जाती थीं। इन कक्षाओं के बाद प.पू.ऐलक श्री निश्चयसागर जी महाराज द्वारा शास्त्र की कुंजी एवं ज्ञानवर्धक ड्रा द्वारा ना केवल शिविरार्थियों का स्वस्थ्य मनोरंजन किया जाता था बल्कि दिन भर का ज्ञानार्जन का पुन: अभ्यास तरोताजा हो जाता था।

इस दौरान ही प्रतिदिन मुनि श्री समतासागर जी महाराज द्वारा 'प्रेरणा प्रवचन माला' के अंतर्गत महत्वपूर्ण विषयों पर सारगर्भित प्रवचन दिया जाता था। शाम को होने वाली आचार्य भक्ति गुरुवंदना और आरती सभी की शारीरिक तथा मानसिक थकाव दूर कर देती थी।

परीक्षा एवं शिक्षा ग्रहण के समय प.पू. मुनि श्री एवं ऐलक जी स्वयं बीच-बीच में कक्षाओं में जाकर ना केवल वहाँ दी जा रही शिक्षण की जानकारी लेते थे बल्कि एक दो प्रश्न पूछकर अथवा उनकी जानकारी देकर शिविरार्थियों का उत्साहवर्धन भी करते थे। लोग महाराज श्री को अपने कक्ष में पाकर हर्ष से गद्‌गद् हो जाते थे।

शिविर की अपार सफलता का आकलन इसी बात से हो जाता है कि लगभग 1100 श्रावकों की समाज में 742 श्रावक, जिनमें छोटे बच्चों से लेकर 85 साल के वृद्ध भी उत्साहपूर्वक शामिल हुए। वास्तव में मुनि श्री की धर्मवत्सलता का यह अपूर्व प्रभाव है कि समाज के श्रावकों ने शिविर के माध्यम से वह ज्ञान प्राप्त किया है जो जन्म जन्मांतरों में उसके लिये न केवल हितकारी होगा बल्कि वह उसके लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक होगा। समाज ऐसे उपकारी गुरु के प्रति श्रद्धा से अभिभूत है तथा विनम्रता से नतमस्तक है।

कल्पद्रुम महामण्डल विधान का भव्य आयोजन

परम पूज्य निर्ग्रन्थाचार्य जिनशासन युग प्रणेता आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के आशीर्वाद से उनकी परम शिष्या आर्यिका रत्न मृदुमति माता जी के ससंघ सान्निध्य में चौक बाजार भोपाल म.प्र. में स्थित दिगम्बर जैन चौबीसी मंदिर में विश्व प्राणी मात्र की शांति हेतु १००८ श्री मज्जिनेन्द्र कल्पद्रुम महामण्डल का भव्य आयोजन दिनांक १०.१०. २००४ से १८.१०.२००४ तक रखा गया है। यह विश्व शांति विधान श्री दि. जैन गुरुकुल मढ़िया जी जबलपुर के अधिष्ठाता बा.ब्र. श्री जिनेश भैयाजी के द्वारा सम्पन्न हुआ। इस विधान में सैकड़ों इन्द्र-इन्द्राणियों ने भाग लिया। दिनांक १८.१०.२००४ को जिनेन्द्र भगवान की भव्य शोभा यात्रा एवं चक्रवर्ती की दिग्विजय यात्रा निकाली गई। विधान में भव्य समवशरण का निर्माण किया गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

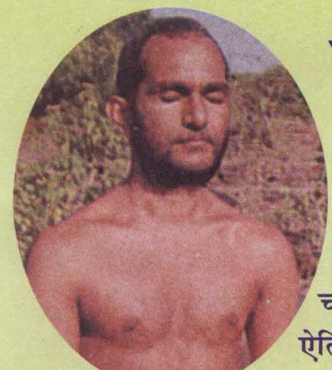

ज्योति के आवाहन और पूजन का पर्व है दीपावली

दीपावली पर्व पर विशेष आलेख

मुनिश्री समतासागर जी

पर्व हमारी सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक हैं। ये आते हैं और हमें एक नया संदेश देकर चले जाते हैं। पूरे वर्ष के चक्र में हमारे बीच कई-कई पर्व आते हैं। पर्व धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक और राष्ट्रीय महत्त्वपूर्ण घटनाओं से जुड़े रहते हैं। दीपावली का पर्व धार्मिक और ऐति हासिक तथ्यों से जुड़ा रहने के कारण आज राष्ट्रव्यापी बना हुआ है। दीपावली का अर्थ है दीपों की पंक्ति/दीप मालायें। आज के दिन दियों को जलाकर हम अपनी खुशियाँ व्यक्त करते हैं। असल में उजाला, प्रकाश जागृति का प्रतीक है, ऐसी जागृति जिसमें किसी को देखा जा सकता है, किसी को पढ़ा जा सकता है। किसी मार्ग पर आगे बढ़ा जा सकता है। अँधेरे से मनुष्य सदा से जूझता आया है। अंधकार से भीति और प्रकाश से प्रीति यह प्राणिमात्र की प्रतीति रही है। आदिकाल से ही मनुष्य की पुकार रही है कि मुझे अंधकार से निकालो और प्रकाश की ओर ले चलो । 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' उसकी अपनी अभिलाषा है, आवाज है। दीपावली के पावन पर्व पर मानव की इसी चिरकालिक अभिलाषा का उद्दीपन होता है। इस दिन लाखों दिये जलाकर उस ज्योति का आवाहन और पूजन किया जाता है जो समस्त ज्योतिर्मयी ब्रह्माण्ड की आदि स्त्रोत रही है। सूरज, चाँद, तारे, धरती पर इसलिये सम्मान पाते हैं कि वे इस धरती को प्रकाश प्रदान करते हैं। झिलमिलाती दीपमालायें अमावस के सघन अंधकार का तिरोहन तो करती ही हैं, मानव के मन को भी मोहकर प्रकाश से भर देती हैं। संक्षेप में यदि पूछा जाये, तो यही कहा जा सकता है कि अंधकार पर विजय पाने की प्रेरणा देता है यह पर्व।

हमारा इतिहास कहता है कि लंकाविजय करने के बाद आज ही के दिन श्रीरामचन्द्र जी अयोध्या लौटकर आये थे, जिसकी खुशी में अयोध्यावासियों ने घर-घर में दीप जलाये थे। जैन परंपरा के अनुसार अमावस्या के प्रातः काल अंतिम तीर्थंकर महावीर को निर्वाण लाभ हुआ था तथा उसी दिन शाम को उनके प्रधान शिष्य गौतम गणधर को केवलज्ञान ज्योति प्राप्त हुई थी। इस कारण उस समय देव देवेन्द्रों और मनुष्यों ने दीप जलाकर अपनी खुशियाँ व्यक्त की थीं । और भी ऐसी अनेक किंवदंतियाँ, कथायें हैं, जो दीपावली पर्व के महत्त्व को दर्शाती हैं। धनतेरस से लेकर भाईदूज तक की तिथियों में जुड़े कथानक, सामाजिक, धार्मिक उपक्रम दीपावली पर्वोत्सव का भरपूर आनंद देते हैं।

पर्व आगमन केपूर्व से ही घरों में सफाई शुरु हो जाती है। घरों की रँगाई, पुताई होती है। मिट्टी के दिये खरीदे जाते हैं। यह दिन लक्ष्मी-आगमन का दिन माना जाता है, इसलिए लोग लक्ष्मीपूजन भी करते हैं। मिठाई खाकर और फटाके फोड़कर पर्व का आनंद मनाया जाता है। लक्ष्मी आगमन के प्रलोभन में तो अधिकांश जन रात में अपनी तिजोरियाँ खोलकर रखते हैं। ऐसे समय में चोरियाँ भी बहुत हो जाती हैं। आनेवाली लक्ष्मी किसी न किसी को छोड़कर ही आएगी और लक्ष्मी जब किसी को छोड़कर अपने पास आ सकती है तो वह यहाँ से छोड़कर कहीं और भी तो जा सकती है। अब तो पर्व का प्रयोजन भी छूटता जा रहा है। आज की दीपावली सिर्फ लाइटों की जगमगाहट अंधाधुंध आतिशबाजी और जुआ खेलने तक सीमित रह गयी। जीवनप्रेरणा के दीप अब जलते कहाँ हैं ? क्या कभी विचार किया कि आतिशबाजी में कितना अपव्यय और बर्बादी है। बड़े-बड़े अग्निकांड तक आतिशबाजी में हो जाते हैं। बड़ी-बड़ी दूकानें, मालगोदामें जलकर खाक हो जाती हैं। पटाखों की तेज ध्वनि और उसकी बारूद से पर्यावरण तो प्रदूषित होता ही है, घोर जीवहिंसा भी होती है। जुआ खेलने से लाखों घर बर्बाद हो जाते हैं। पैसा आने का लोभ बना रहता है, पर आना तो दूर, दीपावली पर कई घरों में दिवाला तक निकल जाता है। वास्तव में यह पर्व उन ज्योति पुरुषों के स्मरण का पर्व है। उनकी स्मृति में दीप जलाकर प्राप्त होने वाले प्रकाश में हृदय की सफाई करने का पर्व है। अपनी धार्मिक सांस्कृतिक ज्ञान चरित्र की लक्ष्मी पूजा करने का पर्व है, अँधेरे में भटकते मानवमन में उजाला फैलाने का पर्व है। क्या कभी हमने यह विचार किया कि कहीं हमारे इन वैभवशाली महलों की रोशनी में कोई दीन कुटिया अँधेरी तो नहीं रह गयी। फटाखों की होनेवाली तेज आवाज, आतिशबाजी, में किसी अभावग्रस्त इंसान की कलह, आवाज तो नहीं दब गयी। मैं कहता हूँ कि दीपमालिका के इस पुनीत पर्व पर बाहरी मिट्टी के दियों के साथ-साथ दिल में करुणा, प्रेम के दिये भी जलें और उससे होनेवाली रोशनी में हम प्राणियों को, प्राणियों की पीड़ा को पहचानने की दृष्टि पा सकें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि नं. UP/HIN/29933/24/1/2001-TC डाक पंजीयन क्र.-म.प्र./भोपाल/588/2003-05

विश्वधर्म की आधारशिला अहिंसा

● मुनि श्री आर्जवसागर जी

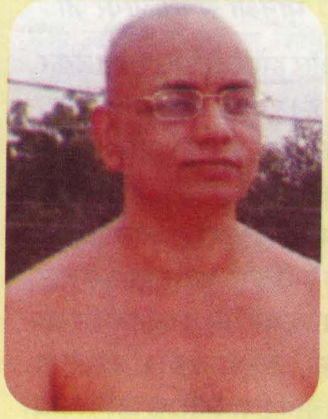

संसार के धर्म नाम से कहे जाने वाले जितने भी संप्रदाय हैं, उन सभी में अहिंसा की प्रमुखता है। इस दृष्टि से सभी धर्मों में समानता ठहरती है । अहिंसा को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है, जैसे दया, अनुकंपा, अभयदान, वात्सल्य, करुणा, रहम, परोपकार, उपग्रह, क्षमा और जीवरक्षण इत्यादि। इन शब्दों में बाह्य दृष्टि से कुछ भेद होते हुए भी सभी का अंतरंग समान है, सभी का भाव जीवों को कष्ट से बचाकर सुख प्रदान करना है। अहिंसा, धर्म का प्राण है । जैसे प्राण के बिना प्राणी का जीवन नहीं, नींव के बिना इमारत नहीं और जड़ के बिना वृक्ष नहीं ठहर सकता, वैसे ही अहिंसा, दया के बिना धर्म रूपी महल या वृक्ष नहीं ठहर सकता, अतः आचार्यों की, महापुरुषों की उद्घोष पूर्ण वाणी है : 'धर्मस्य मूलं दया', 'धम्मो दया विशुद्धो। 'दया धर्म का मूल है, धर्म दया से विशुद्ध है, अतएव जहाँ अहिंसा या दया नहीं वहाँ धर्म की शुरुआत ही नहीं, अहिंसा के बिना धर्म का कथन कागजपुष्प के समान धर्म शब्द की नकल मात्र है। अतः निष्कर्ष यही है कि 'अहिंसा परमो धर्मः', अहिंसा ही उत्कृष्ट धर्म है।

कथनी करनी एक समान। हमारे पूर्वज महापुरुषों ने जैसा कथन किया है, वैसा ही धर्मानुसार आचारण भी किया है। रामायण में भी कहा गया है कि वे रघुवंशी (राम) कभी मांस सेवन नहीं करते और न ही मधु (शहद) का सेवन करते हैं । वे तो शुद्ध शाकाहार करते हुए जंगल में विचरण करते हैं। धन्य ऐसा महापुरुषों का जीवन जो मांस खाना तो दूर, घास पर चलने में तथा ऐसे वचनों में भी हिंसा समझते हैं, जिनसे किसी के मन को कष्ट पहुँचे। वे मुनिमार्ग में ध्यान की प्रसिद्धि हेतु एवं सब तरह की आशाओं की शांति के लिए वस्त्रों का भी त्याग कर देते हैं। इन्हीं महापुरुषों, मुनियों के जीवन को देखकर हमे अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप महान त्यागभावों से उत्तम सीख लेकर अपनी आत्मा को परिशुद्ध बनाना चाहिए। राम, ईश्वर आदि महानात्माओं का नाम लेने वालों के मुख से मांस (अंडा, मछली आदि) का सेवन या जिस मुखसे मांस का सेवन उसी अपवित्र मुख से भगवान के नाम लेने में क्या शोभा है? क्या ऐसा करने से अहिंसक देवता प्रसन्न होंगे? इसका उत्तर 'नहीं' ही मिलेगा। इस प्रकार सद्गति का भागी बनने हेतु अहिंसा धर्म के साथ अपनी कथनी करनी एक होना आवश्यक है।

दूसरी दृष्टि से देखा जाए तो शाकाहार ही सबसे अधिक शक्तिशाली एवं सद्भावनाओं का उद्भावक है। लेकिन जिन लोगों की मांसाहार के प्रति ऐसी धारणा है कि इसमें शक्ति अधिक पायी जाती है, तो उन्हें सोचना चाहिए कि बड़े-बड़े शक्तिशाली हाथी, घोड़ा, गाय आदि का भोजन क्या है? वे केवल शुद्ध शाकाहारी हैं। उन्हें केवल पत्तियों और घास का आहार पर्याप्त होता है। उनका जीवन उसी से चलता है। जैसे वजन को उठाने में अन्य प्राणी सक्षम नहीं। घोड़े जैसी दौड़ में अन्य प्राणी सक्षम नहीं। मोटर की शक्ति की तुलना घोड़े की शक्ति से (हार्स पावर से) ही करते हैं, सिंह आदि की शक्ति से नहीं। ऐसे उन हाथी, घोड़े आदिक में ऐसी अद्भुत शक्ति कहाँ से आती है, तो मात्र शाकाहार से आती है। केवल पत्ती और घास खाने मात्र से ही जिनका शक्तिपूर्ण जीवन हो सकता है, तो क्या मनुष्य के लिए तरह-तरह के फल, सब्जी, धान्य, मेवा, आदिक से भरपूर शक्ति नहीं मिल सकती? अवश्य मिल सकती है, लेकिन फिर भी मांसाहार किया जाना केवल आनार्यपने के साथ जिह्वा की लोलुपता या तामसिक वृत्ति का ही परिचायक है। उसके साथ शुद्ध धार्मिक विचार कैसे आ सकते हैं? एवं पवित्र ध्यान की प्राप्ति कैसे हो सकती है? और अपने जीवन के लिए अपनी आत्मा जैसी सुख दुःख संवेदना के धारक दूसरे जीवों के जीवन को समाप्त कर प्राणी इहपरलोक में सुख से कैसे रह सकते हैं? कभी नहीं।

इसके अलावा जब मांसाहारी जीवों से मनुष्य की शारीरिक रचना (दांत, नख, आंत, पूँछ आदि बिना) ही अलग है, तब कैसे मांसाहार मनुष्य के योग्य हो सकता है? किसी तरह भी नहीं। अंडा भी शाकाहार नहीं कहा जा सकता, क्योंकि नर-मादा का रजवीर्य जिसमें हो तथा जिसके अंदर पंचेन्द्रिय जीव की उत्पत्ति हो, ऐसा अंडा कैसे शाकाहारी हो सकता है ? किसी तरह भी नहीं। और भी करुणा की दृष्टि से विचार करें, तो एक माँ अपने बच्चे के पैदा होने के पहले से ही भावना भाती है कि पैदा होने के बाद हम उसे प्यार से पालें पोसेंगे, लेकिन अंडे का सेवन कर उसके बाहर आने के पहले ही उसे समाप्त कर दिया जाए, तो उस माँ की हालत क्या होगी? दुःख का पार नहीं रहेगा, चाहे वह अंडे की माँ हो या बच्चे की।

स्वामी, प्रकाश एवं मुद्रक : रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, जोन-1, महाराणा प्रताप नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं सर्वोदय जैन विद्यापीठ 1/205 प्रोफेसर कॉलोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org